तिरुक्कुरल

(कुरल)

रचयिता

तिरुवल्लुवर

(श्री एलाचार्य)

हिन्दी अनुवादक

विद्याभूषण पं० गोविन्द राय जैन, शास्त्री

प्रकाशन—

श्री कुन्दकुन्द भारती

१८-बी, स्पेशल इन्स्टिट्यूशनल एरिया,

नई देहली-११००६७

प्रेरणा : आचार्य श्री विद्यानन्द जी

तिरुक्कुरल : तिरुवल्लुवर (एलाचार्य)
TIRUKKURAL : TIRUVALLUVAR (Elacharya)

Religion : 1987
तृतीय आवृत्ति : Sept. 1987

श्री दयालचन्द जैन एवं परिवार
के सौजन्य से प्रकाशित

प्राप्ति स्थान :
श्री दयालचन्द जैन,
Gautam Automobiles,
A-2/138, Safdarjang Enclave,
NEW DELHI-110029

मुद्रक : श्री मुरलीधर (PAMS Print)
9014, देशबन्धु गुप्ता रोड, पहाड़गंज,
नई देहली

प्रस्तावना

विश्व साहित्य में अहिंसा का अमर काव्य
कुन्दकुन्द भारती का वरदान—

पिरविर पेरुंगड़ल नींदुवार नींदान ।
इरैवन अडि सेरदार ।। (कुरल १/१०)

-जिसने भगवान् के चरण कमलों को पहचान लिया है और उन्हें प्राप्त किया है वही इस भवसागर से तरेगा। अन्य सभी इसी में डूब जायेंगे।

भारत वर्ष के प्राचीन साहित्य में प्राकृत, अर्द्धमागधी संस्कृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं के जैन साहित्य के मूल सर्जक अनेक जैन आचार्य विद्वान् कवि माने जाते हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत की भाषाओं में कर्नाटक प्रान्त की भाषा कन्नड़ के साहित्य को समृद्धि के शिखर तक पहुँचाने वाले जैन आचार्य और कवि मनीषी संसार में विख्यात हैं- ऐसे कवि जिनका काव्य विद्वत् समाज में और जन सभाओं के सांस्कृतिक-साहित्यिक उत्सवों में उल्लास के साथ गाया जाता है, पढ़ा सुना जाता है। अभी कुछ बरसों पहले तक हम में से बहुतों की धारणा यह होती थी कि दक्षिण का जो भी व्यक्ति सामने होता था उसे हम 'मद्रासी' कह कर पुकारते थे। जन-साधारण को विगत वर्षों में साहित्यिक, सांस्कृतिक और फिल्मों के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ है कि दक्षिण में अलग

अलग प्रान्त हैं और उनकी अलग अलग महत्त्वपूर्ण भाषाएँ हैं—कर्नाटक की कन्नड़, आन्ध्र प्रदेश की तेलुगु, केरल की मलयालम और तमिलनाडु (मद्रास प्रान्त) की तमिल। कर्नाटक की भाँति तमिलनाडु की भाषा तमिल इतनी प्राचीन है कि वह प्राकृत और मागधी के समकक्ष महत्त्वपूर्ण है। इसी तमिल भाषा का प्राचीन काव्य है 'कुरल' जिसे आदर के साथ बोलने के लिए उसके पहले 'तिरु' अर्थात् 'श्री' लगाते हैं और उसे तिरुक्कुरल कहते हैं।

'कुरल' लगभग दो हजार वर्ष पहले लिखा गया था। 'कुरल' का अर्थ होता है एक छोटा छन्द जिसमें दोहे के समान दो पंक्तियाँ होती हैं। विचित्रता यह है कि दोहे की दोनों पंक्तियों के अन्तिम शब्दों में तुक होती है, कुरल छन्द की पंक्तियों के प्रथम शब्द तुकान्त होते हैं। तमिल भाषा के महान् विद्वान्, जैन दर्शन के व्याख्याता, शिक्षा शास्त्रियों में अग्रगण्य स्व० राव बहादुर प्रोफेसर ए० चक्रवर्ती ने अपने जीवन काल में जो अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है प्राकृत समयसार और पंचास्तिकाय संग्रह का अंग्रेजी अनुवाद तथा अंग्रेजी में टीकाएँ तथा तमिल के कुरल काव्य की व्याख्या एक प्राचीन टीका के आधार पर जो जैन सन्त की लिखी हुई थी। स्व० साहू शान्ति प्रसाद जैन द्वारा स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने स्थापना वर्ष में ही तमिल भाषा की इस मूल टीका को अपनी मद्रास शाखा के माध्यम से प्रकाशित किया था। अंग्रेजी में प्रो० चक्रवर्ती द्वारा अनूदित समयसार और पंचास्तिकाय संग्रह आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाएँ हैं। बहुत गौरव की बात यह है कि तमिल में लिखा 'कुरल काव्य' भी आचार्य कुन्दकुन्द की रचना है, जिन्हें एलाचार्य के नाम से भी स्मरण किया जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द के अनेक नाम मूलसंघ की पट्टावलि में गिनाये गये हैं :

आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो, वक्रग्रीवो महामतिः
एलचार्यो गृद्धपृच्छः पद्मनन्दी वितायते

अर्थात् : कुन्दकुन्द, एवं पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य ।

आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा का पर्याप्त वर्णन कौन कर सकता है। और करने की आवश्यकता भी नहीं है जब शास्त्र की गद्दी पर बैठकर प्रत्येक विद्वान भगवान् महावीर और गौतमगणधर के पुण्यस्मरण के उपरान्त आचार्य कुन्दकुन्द का नाम लेकर जैन धर्म के मङ्गलमय होने का उच्चारण करता है :

मङ्गलं भगवान् वीर मोङ्गलं गौतमो गणीः
मङ्गलं कुन्दकुन्दायो जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम्

विश्व में चिन्तन सागर के अवगाहन और आलोड़न से भारतीय प्रतिभा ने जो रत्न प्राप्त किया है वह है आत्म तत्त्व। उस आत्मतत्त्व की समुज्ज्वल प्रतीति आचार्य कुन्दकुन्द के हृदय में प्रतिबिम्बित हुई और प्रतिष्ठित हुई। उसके प्रकाश की किरणें आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'समयसार' के माध्यम से विकीर्ण की। सहस्रों वर्ष से हम अपनी साधना का आधार समयसार को माने हुए हैं और लाखों भव्यजनों ने आत्मानु-भूति का लक्ष्य प्राप्त करके आचार्य कुन्दकुन्द को केवलीतुल्य मानकर श्रद्धा का रोमांच अर्पित किया है।

तत्त्वदर्शी और आत्मबोध की दीपशिखा द्वारा जन जन के मन को उद्भासित करने वाले आचार्य कुन्दकुन्द के अवदान को अनेक आचार्यों, कवियों, मनीषियों और श्रावकों ने पुण्य प्रताप की भाँति माथे से लगाया है। उनके प्राभृतों की चर्चा शताब्दियों से होती आयी है।

आज हम आचार्य कुन्दकुन्द, एलाचार्य, तिरुवल्लुवर आदि अनेक नामों से विख्यात 'कुरल' के लोक काव्य स्रजेता के प्रति अपनी श्रद्धांजलि, भक्तिभावना और प्रणति अर्पित करके अपने को धन्य मान रहे हैं। उत्तर भारत में प्राकृत, संस्कृत के जिन विद्वानों ने आचार्य कुन्दकुन्द के दर्शन को चिन्तन के ऊँचे से ऊँचे शिखर पर विराजमान देखा है और गद्‌गद् होकर पढ़ा है, चिन्तन किया है :

णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारण तेसिं
कत्ता णहि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं
नियमसार ५।४।८०

मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, न ही मोह हूँ, उनका कारण नहीं हूँ, न उनका कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न करने वालों का अनुमोदक हूँ।

यह एक ऐसी गाथा है जिसकी व्याख्या में पूरा ग्रन्थ लिखा जाये, और जिसके चिन्तन से उत्पन्न प्रकाश की उपलब्धि के लिए किसी वरदानी क्षण को वरदानी काललब्धि माना जाये।

अब कल्पना कीजिये कि उसी आचार्य ने लोक व्यवहार की पवित्रता के लिये, व्यावहारिक सफलता की उपलब्धि के लिए जन साधारण को उपदेश दिया।

मनुष्य जो इच्छायें करता है, उन्हें अपने इष्ट रूप में ही पा सकता है, यदि वह शुद्ध अन्तःकरण से उनका सच्चा संकल्प करे। (६७/७)

उस झूठ में भी सत्यता की विशेषता है, जिसके परिणाम में नियम से भलाई ही होती है। (३०/२)

जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे

कभी मत बोलो, क्योंकि झूठ बोलने से स्वयं तुम्हारा अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी। (३०/३)

अपना अन्तःकरण पवित्र रखो, धर्म का समस्तसार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है, अन्य सब बातें और कुछ नहीं केवल शब्दाडंवर मात्र हैं। (४/४)

शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव हिंसा न करना, बस इन्हीं में तपस्या का सार है। (२७/१)

ठीक पद्धति से सोच विचार कर हृदय में दया धारण करो, और यदि तुम सब धर्मों से इस बारे में जानकारी प्राप्त करोगे तो पाओगे कि दया ही एक मात्र मुक्ति का साधन है। (२५/२)

उस गीत का क्या महत्त्व है जो गाया नहीं जाता, उस आँख का क्या महत्त्व है जो प्रेम नहीं दर्शाती। (५८/३)

जब तक तुम्हारा खाया हुआ अन्न पच न जाये और जब तक कड़क कर भूख न लगे तब तक भोजन के लिए ठहरे रहो और उसके पश्चात् शान्ति से खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल हो। दीर्घायु होने का यही सर्वोत्तम मार्ग है। (९५/४)

वही उत्तम सहधर्मिणी है जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हैं, और जो अपने पति की सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती। (६/१)

सत्पुरुषों की मित्रता दिव्यग्रन्थों के स्वाध्याय के समान है। जितनी ही तुम्हारी उनके साथ घनिष्टता होती जायेगी उतने ही अधिक रहस्य तुम्हें उनके भीतर दिखाई पड़ने लग जायेंगे। (७९/३)

मित्रता का उद्देश्य हंसी विनोद करना नहीं है, बल्कि जब कोई बहक कर कुमार्ग पर जाने लगे तो उसको रोकना और उसकी भर्त्सना करना ही मित्रता का लक्ष्य है। (७६/४)

प्राणियों की हिंसा व मांस भक्षण से विरक्त होना, सैकड़ों यज्ञों में बलि और आहुति देने से बढ़कर है। (२६/६)

देखो, जिस राजा में कानों को अप्रिय लगने वाले वचनों को सहन करने का गुण है, पृथ्वी निरन्तर उसकी छत्र छाया में रहेगी। (३६/६)

जब घर में अतिथि हो, तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिए। (६/२)

इन उदाहरणों से स्पष्ट होगा कि पुण्यमूर्ति एलाचार्य जन जन को सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए जैन धर्म के लोक कल्याणकारी गृहस्थ धर्म के विलक्षण प्रवक्ता थे।

एलाचार्य स्वामी के ज्ञान, अनुभव और लोक जीवन की समस्याओं को तलस्पर्शी दृष्टि से देखने की क्षमता अद्भुत है। उनका गृहस्थ जीवन यदि था, तो कैसा था। जीवन की विकृति जिन परिस्थितियों से उपजती है उनका उन्हें ज्ञान था। समस्याओं का समाधान इतना यथार्थ और अनन्तिम है कि जैसे कोई सर्वज्ञ स्वयं देख रहा हो और वात्सल्य से उंगली पकड़ कर जीवन की सही राह पर ले जा रहा हो।

राजा का सारा परिकर उसके दायित्व, उसकी शक्ति और उसकी कमजोरी जैसे उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष देखी, समझी, भोगी है। कौटिल्य अर्थशास्त्र से भी ऊपर की एक ऐसी व्यवहारिक दृष्टि कुरल में परिलक्षित है जो नितान्त नैतिक है। कौटिल्य ने अपकर्म और वेश्यावृत्ति से प्राप्त कर को आय का साधन माना

है। कुरल ने इसे हीन वृत्ति मानकर प्रजा के सहयोग और सदाशयता पर बल दिया है।

कुरल की कीर्ति भारतीय साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में प्रतिष्ठित है। संसार की कोई ऐसी प्रमुख भाषा नहीं जिसमें कुरल का अनुवाद न हो चुका हो। भारतीय भाषाओं में भी यह उपलब्ध है। कुरल एक नैतिक ग्रन्थ है और क्योंकि इसका विषय सम्प्रदायातीत है मनुष्य मात्र के लिए उपादेय है, इसलिए दक्षिण में सभी धर्म और सम्प्रदाय कुरल कर्त्ता को तिरुवल्लुवर के नाम से अपना मानते है। यहाँ तक कि ईसाई कवि पोप जैसे विद्वान इन्हें ईसा के सिद्धान्तों के प्रचारक मानते हैं और कहते हैं कि जब सेंट टौमस मद्रास आये थे तब तिरुवल्लुवर से मल्लयपुर में मिले थे और इनकी मित्रता हो गयी थी। तमिल साहित्यकार का ना सुब्रह्मण्यम ने उन दोनों के इस मिलन, धर्मचर्चा तथा तत्कालीन प्रभाव के बारे में एक उपन्यास लिखा है। इसके अतिरिक्त का ना ने आचार्य कुन्दकुन्द को मान्यता देते हुए कुरल पर जो विवेचन अंग्रेजी में लिखा है वह भारतीय ज्ञानपीठ से Tiruvalluvar and His Tirukkural शीर्षक से हाल ही में छपा है।

कुरल के रचयिता कुन्दकुन्दाचार्य या एलाचार्य थे और यह ग्रन्थ अहिंसा मूलक जीवन पद्धति का नीति ग्रन्थ है इस पर प्रो० चक्रवर्ती ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।

कुरल जैन कृति है इसके विषय में कतिपय निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं।

१. सारे ही ग्रन्थ में अहिंसा, दया, संयम, शुद्ध सात्विक जीवनचर्या की प्रशंसा है यह जैन जीवन पद्धति का ही मुख्य आधार है।

२. कुरल में हिंसा सम्बन्धी वैदिक मान्यताओं की गर्हा है। पशु यज्ञ, बलि, मांसाहार, मधुपर्क से अतिथि सत्कार आदि की प्रबल अमान्यता है।

३. वैदिक सभ्यता जिस वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है और उसमें कृषि को नीची श्रेणी के मनुष्यों की जीविका का साधन माना गया है, उसके विपरीत कुरल में कृषि को सर्व श्रेष्ठ माना गया है। वह जीवन का आधार है। साधु धर्म और श्रावक धर्म दोनों इससे सधते हैं।

४. कुरल जैन ग्रन्थ है इसका सबसे बड़ा प्रमाण है पहला अध्याय—'ईश्वर स्तुति' जिसके दसों पद्यों में परम्परागत जैन मान्यता का सन्दर्भ है।

(क) पहले पद्य में ही शब्द आता है 'आदिपकवन' स्पष्ट ही तमिल के सोमित वर्णाक्षरों के कारण 'म' और 'ग' के स्थान पर 'प' और 'क' आये हैं, अत: आदि मंगलाचरण आदिनाथ आदि भगवान का है।

(ख) दूसरे पद्य में 'सर्वज्ञ' का संदर्भ है तीसरे पद्य में शब्द है 'मूलमिशै' अर्थात् कमल पर चलने वाले। जैन मान्यता में अरहन्त भगवान पृथ्वी से ऊँचे चलते हैं और देव उनके चरणों के नीचे कमल रचते जाते हैं। चौथे पद्य में अरहन्त के चरणारबिन्द की वन्दना का उल्लेख है।

पांचवें में दो प्रकार के कर्मों का सन्दर्भ है (घातिया अघातिया) छठे में जितेन्द्रिय के उल्लेख में 'जिन' की महत्ता का, सातवें आठवें नौवें में (अर्हन्त) देव की शरण में जाने से

सुख, धर्मचक्र, सिद्ध के आठ गुणों का उल्लेख है। दसवें पद्य में तो जिस प्रकार परवर्तीकाल में मानतुंग आचार्य ने भक्तामर स्त्रोत में 'आलम्बनं भवजले पततां जनानाम' कहा है, उसका स्रोत कुरल का यह दसवाँ पद्य प्रतीत होता है। जिसमें कहा गया है :—

'जन्म मरण के सागर को वह ही पार कर सकते हैं जो भगवान के चरणों का आलम्बन पाते हैं।'

जिन्हें जैन स्तवन के प्रतीकों का ज्ञान नहीं, जो पंचपरमेष्ठी की कल्पना से परिचित नहीं, जो जैन मंगलपाठ से परिचित नहीं, वह इन पद्यों को ठीक-ठीक ग्रहण ही नहीं कर सकते। यों भी, यदि कोई जैनेत्तर विद्वान् या सामान्य व्यक्ति जैन इतिहास और संस्कृति के अज्ञान के कारण दुराग्रही होकर जैन आचार्य की वर्चस्विता को जान-बूझकर स्वीकार करना नहीं चाहते तो इसका उपाय ही क्या है?

चार पुरुषार्थ :

'कुरल' के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इसके १०८ परिच्छेदों में तीन पुरुषार्थों का ही प्रवचन है—धर्म (अरम), अर्थ (पौरुल) और काम (इनबम)। लगता यह है कि मोक्ष पुरुषार्थ की व्याख्या में कर्म सिद्धान्त के जिन तत्त्वों का विवेचन अपेक्षित है—गुणस्थान, कर्म प्रकृति, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा आदि और जो साधु की चर्या में अंग हैं, उनकी दार्शनिक शैली और शब्दावली सामान्य जनता के बोध से

बाहर पड़ जाती है, अतः लोक जीवन की गृहस्थ चर्या को मंगलमय बनाने के लिए ही आचार्य ने तीन पुरुषार्थों का वर्णन किया है।

शैली :

विचार और आचार का भव्य प्रवचन जिस कलात्मक शैली में किया गया है उसके कारण कुरल तमिल साहित्य की निधि हो गया है। यह एलाचार्य (तिरुवल्लुवर) की शैली का चमत्कार है कि प्रत्येक शब्द को अन्तर की प्रज्ञा से निश्चित करके उसका भाव के साथ तादात्म्य बैठाया गया है। छन्द योजना इतनी निर्दोष है और कवित्व इतना ललित कि गद्य में पढ़ते हुए अनुमान ही नहीं लग सकता कि रचना मे कवित्व की लय, छन्द का संगीत और शब्द बन्ध की चारुता, प्रतिभा के किस अपार कौशल से साधी गयी है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का जन्म बताया जाता है, कि मद्रास के मेलापुर के क्षेत्र में हुआ। वह राजवंश के थे, किन्तु जनता में अलग अलग प्रकार की किंवदन्तियाँ हैं। कोई सन्त तिरुवल्लुवर को ज्योतिषी मानता है, कोई जुलाहा। किन्तु जाति का प्रश्न लोक जीवन में नगण्य है। तिरुवल्लुवर नाम हो या एलाचार्य या कुन्दकुन्द स्वामी उनकी चरण पादुकाएँ मलय प्रान्त (आन्ध्र) के पोन्नूर ग्राम के पास नीलगिरि पहाड़ी पर प्रतिष्ठित हैं जिन्हे जन सामान्य पूजता है और जहाँ वार्षिक मेला होता है। उस गुफा में बैठकर प्राभृतों की रचना हुई थी। अद्‌भुत शान्ति है उस स्थान पर। भयंकर ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ शीतल वायु चलती है, यह मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

हमें इस बात का गौरव है कि भारतीय प्रज्ञा और प्रतिभा का चरमोत्कर्ष जिनके भव्य व्यक्तित्व में प्रतिष्ठित है, जिनकी नव नव उन्मेषशालिनी सर्जना अध्यात्म और मानव धर्म, लोक कल्याण और संस्कृति संवर्धन की योजनाओं में तल्लीन है,

उन आचार्य विद्यानन्द मुनिराज ने दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती की स्थापना द्वारा साहित्य के उद्धार और संस्कृति के प्रचार प्रसार के कार्यों को स्थायी आधार दे दिया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के द्विसहस्राब्द श्रद्धांजलि समारोह के उपलक्ष में कुरल काव्य का प्रकाशन योजना का एक अंग है। विद्याभूषण पंडित गोविन्दराम जैन शास्त्री ने लगभग बीस वर्ष पहले इसका अनुवाद संस्कृत तथा हिन्दी पद्य में और गद्य में किया था। उसे अद्यतन रूप में आचार्य विद्यानन्द जी मुनिराज की प्रेरणा से कुन्दकुन्द भारती ग्रन्थमाला में प्रकाशित किया जा रहा है।

विश्वास है कि यह देश के जन साधारण के मन में भी अहिंसा के व्यावहारिक स्वरूप का दर्शन प्रस्तुत करेगा; जीवन चर्या को सुन्दर स्वस्थ और उद्देश्यपूर्ण बनाने में सहायक होगा तथा जीवन के अनेक क्षेत्रों के लिए जिन नैतिक सूत्रों का प्रणयन कुन्दकुन्द स्वामी ने अध्यात्म की सहगामिनी प्रवृत्ति के रूप में लोकमंगल के लिए किया है वह मनन में प्रेरणादायक और व्यवहार में सिद्धिदायक प्रमाणित होगा।

आचार्य विद्यानन्द जी का आदेश कि मैं यह भूमिका लिखूं, उनके आशीर्वाद और कृपापूर्ण स्नेह का द्योतक है। पुण्य कर्म से ही ऐसा सुयोग मिलता ह। मैं कृतज्ञ हूँ।

अनन्त चतुर्दशी — लक्ष्मी चन्द्र जैन
६ सितम्बर, १९८७

दो शब्द

'दुनिया मतवाली हो रही है। लोग पापी, दुराचारी, कपटी और बेईमान बन गये हैं। खासकर राष्ट्रीय मामलों में दगा और फरेब से काम लिया जाता है। जो महान संग्राम इस वक्त यूरोप में हो रहा है उसका भी यही एक कारण है कि वहाँ वालों के दिलों में सन्तोष नहीं है, और बिना संतोष के दूसरों के प्रति इन्साफ और मैत्री भाव का बर्ताव नहीं हो सकता, बल्कि हमेशा लूट खसोट की नियत रहती है। जो राष्ट्र अपनी रक्षा करने में असमर्थ है वे अन्य कूटनीतिज्ञ राष्ट्रों के शिकार बन जाते हैं अथवा यूं कहो, कूटनीतिज्ञ राष्ट्र उनपर अपनो सत्ता जमा लेते हैं।

यह सन्तोष मनुष्यों के हृदयों में कैसे पैदा किया जाये? इसके लिये वर्तमान यूरोपीय युद्ध से ही स्पष्ट है कि न तो यूनिवर्सिटियों की शिक्षा का और न अलंकार युक्त धर्म ग्रन्थों की आज्ञाओं का राष्ट्रीय नेताओं के हृदयों पर कुछ भो असर होता है; क्योंकि यूनिवर्सिटी की शिक्षा मनुष्य को यही सिखाती है कि उसमें और जानवरों में बुद्धि के सिवा और कुछ भी फरक नहीं है। और अलकार युक्त धर्म शास्त्रों का प्रभाव इसलिये नहीं पड़ता कि उनका भाव जब तक ठीक-ठीक न समझा जाये वह कोरा पाखंड ही नजर आता है। इसलिए वैज्ञानिक धार्मिक शिक्षा ही एक मात्र कुंजी है जो मनुष्य को आत्मविज्ञान का बोध कराती है, जिसके सबब उसको अपनी आत्मा की उन्नति और अवनति का खयाल होता जाता है।

वो दुनियाँ के वैभवों की ओर वहीं तक नजर डालता है जहाँ तक ऐसा करने से उसकी आत्मा को नुकसान न पहुँचे। आत्मा अगर दुर्गति को गया तो दुनियाँ के वैभवों के संग्रह से क्या प्रयोजन ?

अब जिनको साइनटिफिक् धर्म का पता चल गया है या जिन्हें मालूम है, उनका कर्तव्य है कि वो आत्मविज्ञान का पूर्ण रूपेण दुनियाँ में प्रचार करने में लग जाएँ और इस तरह प्रचार करें जिससे किसी को बुरा न लगे---प्रेम और मित्रता से काम लें---किसी को दुतकारें नहीं, न किसी के लिये म्लेच्छ या धर्मभ्रष्ट आदि शब्दों का प्रयोग करें। प्रेम के साथ जब आत्मविज्ञान का प्रचार होगा तो निस्सन्देह लोगों के दिलों पर उसका असर पड़ेगा, परन्तु याद रहे प्रचार को स्वयं अपने मन के पाखंडों से, यदि कोई उसमें हों तो उनसे मुक्त होना पड़ेगा।'

(चंपतराय जैन-- धर्म रहस्य --पृ० ११०-१११, १६४०)

विषय परिचय

जैनाचार्य तिरुवल्लुवर

परिच्छेद १

ईश्वर-स्तुति

१—"अ" जिस प्रकार शब्द-लोक का आदि वर्ण है, ठीक उसी प्रकार आदि भगवान पुराण-पुरुषों में आदि पुरुष हैं।

२—यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो तो तुम्हारी सारी विद्वत्ता किस काम की ?

३—जो मनुष्य उस कमलगामी परमेश्वर के पवित्र चरणों की शरण लेता है, वह जगत् में दीर्घजीवी होकर सुख-समृद्धि के साथ रहेगा।

४—धन्य है वह मनुष्य, जो आदिपुरुष के पादारविन्द में रत रहता है। जो न किसी से राग करता है और न घृणा; उसे कभी कोई दुःख नहीं होता।

५—देखो, जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साहपूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने भले-बुरे कर्मों का दुःखद फल नहीं भोगना पड़ता।

६—जो लोग उस परम जितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्ममार्ग का अनुसरण करते हैं, वे चिरजीवी अर्थात् अजर-अमर बनेंगे।

७—केवल वे ही लोग दुःखों से बच सकते हैं, जो उस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं।

८—धन वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफानी समुद्र को वे ही पार कर सकते हैं, जो उस धर्मसिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं।

९—जो मनुष्य अष्ट गुणों से मण्डित परब्रह्म के आगे सिर नहीं झुकाता, वह उस इन्द्रिय के समान है, जिसमें अपने गुणों को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।

१०—जन्म-मरण के समुद्र को वे ही पार कर सकते हैं, जो प्रभु के चरणों की शरण में आ जाते हैं। दूसरे लोग उसे तर नहीं सकते।

परिच्छेद २

मेघ-महिमा

१—समय पर न चूकने वाली मेघवर्षा से ही धरती अपने को धारण किये हुए है, और इसीलिए लोग उसे अमृत कहते हैं।

२—जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ हैं, वे सब वर्षा ही के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं, और जल स्वयं ही भोजन का एक मुख्य अंग है।

३—यदि पानी न वर्षे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये, यद्यपि वह चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।

४—स्वर्ग के झरने यदि सूख जावें तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

५—वर्षा ही नष्ट करती है और फिर यह वर्षा ही है, जो नष्ट हुए लोगों को फिर से हरा भरा कर देती है।

६—यदि आकाश से पानी की बौछारें आना बन्द हो जाएँ तो घास का उगना तक बन्द हो जायेगा।

७—स्वयं शक्तिशाली समुद्र में ही कुत्सित वीभत्सता का दारुण प्रकोप जग उठे, यदि आकाश उसके जल

को पान करना और फिर उसे वापिस देना अस्वीकार कर दे।

८—यदि स्वर्ग का जल सूख जाये तो न पृथ्वी पर यज्ञ-याग होंगे और न भोज ही दिये जाएँगे।

९—यदि ऊपर से जल धारायें आना बन्द हो जाएं तो फिर इस पृथ्वी भर में न कहीं दान रहे, न कहीं तप।

१०—पानी के बिना संसार में कोई काम नहीं चल सकता, इसलिये सदाचार भी अन्ततः वर्षा ही पर आश्रित है।

परिच्छेद ३

मुनि महिमा

१—जिन लोगों ने इन्द्रियों के समस्त उपभोगों को त्याग दिया है और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं; धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बताते हैं।

२—तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते। यह काम उतना ही कठिन है जितना कि दिवंगत आत्माओं की गणना करना।

३—जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक की तुलना करने के पश्चात् इसे त्याग दिया है, उनकी महिमा से यह पृथ्वी जगमगा रही है।

४—जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के द्वारा पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है, वास्तव में, वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

५—पंचेन्द्रियों की तृष्णा जिसने शमन की है, उस तपस्वी के तप में क्या सामर्थ्य है, यदि यह देखना चाहते हो तो देवाधिदेव और इन्द्र की ओर देखो।

६—महान् पुरुष वे ही हैं, जो अशक्य कार्यों

को भी सम्भव कर लेते हैं और क्षुद्र वे हैं, जिनसे यह काम नहीं हो सकता।

७—जो, स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द इन पाँच इन्द्रिय विषयों का यथोचित उपभोग करता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा।

८—संसार भर के धर्म-ग्रन्थ, सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

९—त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भी सह लेना असम्भव है।

१०—साधुप्रकृति पुरुषों को ही ब्राह्मण कहना चाहिये, कारण वे ही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं।

परिच्छेद ४

धर्म-महिमा

१—धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है और उससे स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है, फिर भला धर्म से बढ़कर, लाभदायक वस्तु और क्या है ?

२—धर्म से बढ़कर दूसरी और कोई नेकी नहीं, और उसे भुला देने से बढ़कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

३—सत्कर्म करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और पूर्ण उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

४—अपना अन्तःकरण पवित्र रक्खो, धर्म का समस्त सार बस इसी उपदेश में समाया हुआ है, अन्य सब बातें और कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र है।

५—ईर्ष्या, लालच, क्रोध और अप्रिय बचन; इन सबसे दूर रहो, धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

६—यह मत सोचो कि मैं धीरे धीरे धर्म-मार्ग का अवलम्बन करूँगा, किन्तु अभी बिना बिलम्ब किये ही शुभ कर्म करना प्रारम्भ कर दो क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मृत्यु के समय तुम्हारा साथ देने वाला, अमर मित्र होगा।

७—मुझसे यह मत पूछो कि धर्म करने से

क्या लाभ है ? बस एक बार पालकी उठाने वाले कहारों की ओर देख लो ओर फिर उस आदमी को देखो, जो उसमें सवार है।

८—यदि तुम, एक भी दिन व्यर्थ नष्ट किये बिना, समस्त जीवन सत्कर्म करने में बिताते हो तो तुम आगामी जन्मों का मार्ग बन्द किये देते हो।

९—केवल धर्म-जनित सुख ही वास्तविक सुख है, शेष सब तो पीड़ा और लज्जा-मात्र हैं।

१०—जो काम धर्मसंगत है, बस वही कार्यरूप में परिणत करने योग्य है। दूसरी जितनी बातें धर्मविरुद्ध हैं, उनसे दूर रहना चाहिए।

परिच्छेद ५

गृहस्थाश्रम

१—गृहस्थाश्रम में रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है।

२—गृहस्थ अनाथों का नाथ, गरीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।

३—पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा, देवपूजन, अतिथिसत्कार, बन्धु-बान्धवों की सहायता और आत्मोन्नति, ये गृहस्थ के पाँच कर्म हैं।

४—जो बुराई से डरता है और भोजन करने से पहिले दूसरों को दान देता है, उसका वंश कभी निर्बीज नहीं होता।

५—जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतया सन्तुष्ट रहता है—उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं।

६—यदि मनुष्य गृहस्थ के सब कर्तव्यों को उचित रूप से पालन करे, तब उसे दूसरे आश्रमों के धर्मों के पालने की क्या आवश्यकता?

७—मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं।

८—जो गृहस्थ दूसरे लोगों को कर्तव्यपालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियों से अधिक पवित्र है।

९—सदाचार और धर्म का विशेषतया विवाहित जीवन से सम्बन्ध है और सुयश उसका आभूषण है।

१०—जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है जिस तरह कि उसे करना चाहिए, वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

परिच्छेद ६

सहधर्मिणी

१—वही उत्तम सहधर्मिणी है, जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति की सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती।

२—यदि पत्नी गृहिणी के गुणों से रहित हो तो और सब देनगियों के होते हुये भी गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है।

३—यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन सी वस्तु है जो उसके पास विद्यमान नहीं ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर उसके पास है ही कौन-सा द्रव्य ?

४—नारी अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो जगत में उससे बढ़ कर गौरव पूर्ण बात और क्या है ?

५—जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती किन्तु बिछौने से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है, जल से भरे हुये बादल भी उसका कहना मानते हैं।

६—वही उत्तम सहधर्मिणी है जो अपने धर्म और यश की रक्षा करती है तथा प्रेमपूर्वक अपने पतिदेव की आराधना करती है।

७—चार दिवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने

से क्या लाभ ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय-निग्रह है।

८—जो महिला लोकमान्य और विद्वान् पुत्र को जन्म देती है, स्वर्गलोक के देवता उसकी स्तुति करते हैं।

६—जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने वैरियों के सामने गर्व से माथा ऊँचा करके सिंह-वृत्ति के साथ नहीं चल सकता।

१०—सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है, और सुयोग्य सन्तति उसके महत्त्व की पराकाष्ठा।

परिच्छेद ७

सन्तान

१—बुद्धिमान् सन्तति पैदा होने से बढ़ कर संसार में दूसरा सुख नहीं।

२—वह मनुष्य धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलंक है सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू नहीं सकती।

३—सन्तान ही मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है, क्योंकि वह अपने संचित पुण्य को अपने कृत्यों द्वारा उसमें पहुँचाता है।

४—निस्सन्देह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट वह साधारण 'रसा' है जिसे अपने बच्चे छोटे-छोटे हाथ डालकर घँघोलते हैं।

५—बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है, और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना।

६—बंशी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है, ऐसा वे ही लोग कहते हैं जिन्होंने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी है।

७—पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य यही है कि उसे सभा में, प्रथम पंक्ति में बैठने योग्य बनादे।

८—बुद्धि में अपने बच्चे को अपने से बढ़ा हुआ पाने में सभी को आनन्द होता है।

९—माता के हर्ष का कोई ठिकाना नहीं रहता जब उसके गर्भ से लड़का उत्पन्न होता है, लेकिन उससे भी कहीं अधिक आनन्द उस समय होता है जब लोगों के मुँह से उसकी प्रशंसा सुनती है।

१०—पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य क्या है? यही कि संसार उसे देखकर उसके पिता से पूछे, किस तपस्या के बल से तुम्हें ऐसा सुपुत्र मिला है?

परिच्छेद ८

प्रेम

१—ऐसा आगर अथवा डंडा कहाँ है जो प्रेम के दरवाजे को बन्द कर सके ? प्रेमियों की आँखों के मन्दमन्द अश्रु-बिन्दु अवश्य ही उसकी उपस्थिति की घोषणा किये बिना न रहेंगे।

२—जो प्रेम नहीं करते, वे केवल अपने लिए ही जीते हैं और जो दूसरों को प्रेम करते हैं, उनकी हड्डियाँ भी दूसरों के काम आती हैं।

३—कहते हैं कि प्रेम का आनन्द लेने के लिए ही आत्मा एक बार फिर अस्थि-पिञ्जर में बन्द होने को राजी हुआ है।

४—प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेहशीलता से ही मित्रता रूपी बहुमूल्य रत्न पैदा होता है।

५—लोगों का कहना है कि भाग्यशाली का सौभाग्य इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में उसके निरन्तर प्रेम का ही पारितोषिक है।

६—वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि प्रेम केवल सद्गुणी मनुष्य के लिए ही है, क्योंकि दुष्टों के विरुद्ध खड़े

होने के लिये भी प्रेम ही एकमात्र साथी है।

७—देखो, अस्थि-हीन कीड़े को सूर्य किस तरह जला देता है! ठीक उसी तरह धर्मशीलता उस मनुष्य को जला डालती है जो प्रेम नहीं करता।

८—जो मनुष्य प्रेम नहीं करता वह तभी फूले फलेगा कि जब मरुभूमि के सूखे हुए वृक्ष के ठूंठ में कोपलें निकलेंगी।

९—बाह्य सौन्दर्य किस काम का जबकि प्रेम जो आत्मा का भूषण है हृदय में न हो?

१०—प्रेम जीवन का प्राण है? जिसमें प्रेम नहीं वह केवल मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है।

परिच्छेद ९

अतिथि सत्कार

१—बुद्धिमान् लोग, इतना परिश्रम करके गृहस्थी किस लिये बनाते हैं ? अतिथि को भोजन देने और यात्री की सहायता करने के लिये।

२—जब घर में अतिथि हो तब चाहे अमृत हो क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये।

३—घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करने में जो कभी नहीं चूकता, उस पर कभी कोई आपत्ति नहीं आती।

४—जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत करता है, उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को आह्लाद होता है।

५—प्रथम अतिथि को जिमाकर उसके पश्चात् बचे हुये अन्न को जो स्वयं खाता है, क्या उसे अपने खेत को बोने की आश्यकता होगी ?

६—जो पुरुष बाहिर जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले अतिथि की प्रतीक्षा करता है, ऐसा आदमी देवताओं का सुप्रिय अतिथि बनता है।

७—हम किसी अतिथि-सेवा के महात्म्य का

वर्णन नहीं कर सकते कि उसमें कितना पुण्य है। अतिथि यज्ञ का महत्त्व तो अतिथि की योग्यता पर निर्भर है।

८—जो मनुष्य अतिथि-सत्कार नहीं करता वह एक दिन कहेगा—मैंने परिश्रम करके इतना धन वैभव जोड़ा पर हाय! सब व्यर्थ ही हुआ, कारण वहाँ मुझे सुख देने वाला कोई नहीं है।

९—सम्पत्तिशाली होते हुए भी जो यात्री का आदर-सत्कार नहीं करता, वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है, यह बात केवल मूर्खों में ही होती है।

१०—पारिजात का पुष्प सूंघने से मुर्झा जाता है पर अतिथि का मन तोड़ने के लिये एक दृष्टि ही पर्याप्त है।

परिच्छेद १०

मधुर-भाषण

१—सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है, क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

२—औदार्यमय दान से भी बढ़कर सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता, दृष्टि की स्निग्धता और स्नेहार्द्रता में है।

३—हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध-दृष्टि में ही धर्म का निवास स्थान है।

४—जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय को आह्लादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

५—नम्रता और प्रिय-संभाषण, बस ये ही मनुष्य के आभूषण हैं, अन्य नहीं।

६—यदि तुम्हारे विचार शुद्ध तथा पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पाप-वृत्ति का क्षय हो जायगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

७—सेवाभाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है तथा बहुत से लाभ पहुँचाता है।

८—वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और

क्षुद्रता से रहित हैं इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख पहुँचाते हैं।

९—श्रुति-प्रिय शब्दों का माधुर्य चखकर भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता ?

१०—मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानों पके फलों को छोड़ कर कच्चे फल खाता है।

परिच्छेद ११

कृतज्ञता

१—आभारी बनाने की इच्छा से रहित होकर जो दया दिखाई जाती है, स्वर्ग और पृथ्वी दोनों मिल कर भी उसका बदला नहीं चुका सकते ।

२—अवसर पर जो उपकार किया जाता है, वह देखने में छोटा भले ही हो, पर जगत में सबसे भारी है ।

३—प्रत्युपकार मिलने की चाह के बिना जो भलाई की जाती है, वह सागर से भी अधिक बड़ी है ।

४—किसी से प्राप्त किया हुआ लाभ, राई की तरह छोटा ही क्यों न हो, किन्तु समझदार आदमी की दृष्टि में वह ताड़वृक्ष के बराबर है ।

५—कृतज्ञता की सीमा, किये हुए उपकार पर अवलम्बित नहीं है, उसका मूल्य उपकृत व्यक्ति की लायकी पर निर्भर है ।

६—महात्माओं की मित्रता की अवहेलना मत करो और उन लोगों का त्याग मत करो जिन्होंने संकट के समय तुम्हारी सहायता की है ।

७—जो किसी को कष्ट से उबारता है, जन्म-जन्मान्तर तक उसका नाम कृतज्ञता के साथ लिया जायेगा ।

८—उपकार को भूल जाना नीचता है, लेकिन यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको तुरन्त ही भुला देना बड़प्पन का चिह्न है।

९—हानि पहुँचाने वाले का यदि कोई उपकार स्मृत हो आता है तो महा भयङ्कर व्यथा पहुँचाने वाली भी चोट उसी क्षण भूल जाती है।

१०—और सब दोषों से कलङ्कित मनुष्यों का तो उद्धार हो सकता है, किन्तु अभागे अकृतज्ञ मनुष्य का कभी उद्धार न होगा।

परिच्छेद १२

न्यायशीलता

१—न्यायनिष्ठा का सार केवल इसी में है कि मनुष्य निष्पक्ष होकर, धर्मशीलता के साथ दूसरे के देय अंश को देवे, फिर चाहे लेने वाला शत्रु हो या मित्र।

२—न्यायनिष्ठ की सम्पति कभी कम नहीं होती। वह दूर तक, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती।

३—सन्मार्ग को छोड़कर जो धन मिलता है, उसे कभी हाथ न लगाओ, भले ही उससे लाभ के अतिरिक्त और किसी बात की सम्भावना न हो।

४—भले और बुरे का पता उसकी सन्तान से चलता है।

५—भलाई और बुराई का प्रसंग तो सभी को आता है, पर एक न्यायनिष्ठ मन बुद्धिमानों के लिए गर्व की वस्तु है।

६—जब तुम्हारा मन सत्य से विमुख होकर असत्य की ओर झुकने लगे तो समझ लो कि तुम्हारा सर्वनाश निकट ही है।

७—संसार धर्मात्मा और न्याय-परायण पुरुष की निर्धनता को हेय-दृष्टि से नहीं देखता।

८—बराबर तुली हुई उस तराजू की डंडी को देखो, वह सीधी है और दोनों ओर एक सी है। बुद्धिमानों का गौरव इसी में है कि वे इसके समान ही बनें, न इधर को झुकें और न उधर को।

९—जो मनुष्य अपने मन में भी नीति से नहीं डिगता, उसके न्यायमार्गी ओठों से निकली हुई बात नित्य-सत्य है।

१०—उस सद्व्यवहारी पुरुष को देखो कि जो दूसरे के कामों को भी अपने विशेष कार्यों के समान ही देखता भालता है। उसके उद्योग-धन्दे अवश्य उन्नति करेंगे।

परिच्छेद १३

संयम

१—आत्म-संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत इन्द्रिय-लिप्सा अपार अंधकारपूर्ण नरक के लिए खुला हुआ राजपथ है।

२—आत्म-संयम की रक्षा अपने खजाने के समान ही करो, कारण उससे बढ़कर इस जीवन में और कोई निधि नहीं है।

३—जो पुरुष ठीक तरह से समझ बूझ कर अपनी इच्छाओं का दमन करता है, उसे मेधादिक सभी सुखद वरदान प्राप्त होंगे।

४—जिसने अपनी समस्त इच्छाओं को जीत लिया है और जो अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं होता, उसकी आकृति पहाड़ से भी बढ़कर प्रभावशाली होती है।

५—विनय सभी को शोभा देती है, पर पूरी श्री के साथ श्रीमानों में ही खुलती है।

६—जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को उसी तरह अपने में खींच कर रखता है, जिस तरह कछुआ अपने हाथ पाँव को खींच कर भीतर छुपा लेता है, उसने अपने समस्त आगामी जन्मों के लिए खजाना जमा कर रखा है।

७—और किसी को चाहे तुम मत रोको, पर अपनी जिह्वा को अवश्य लगाम लगाओ, क्योंकि बेलगाम की जिह्वा बहुत दुःख देती है।

८—यदि तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को कष्ट पहुँचता है तो तुम अपनी सब भलाई नष्ट हुई समझो।

९—आग का जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, पर वचन का घाव सदा हरा बना रहता है।

१०—उस मनुष्य को देखो जिसने विद्या और बुद्धि प्राप्त कर ली है। जिसका मन शान्त और पूर्णतः वश में है, धार्मिकता तथा अन्य सब प्रकार की भलाई उसके घर उसका दर्शन करने के लिए आती हैं।

परिच्छेद १४

सदाचार

१—जिस मनुष्य का आचरण पवित्र है सभी उसकी वन्दना करते हैं इसलिये सदाचार को प्राणों से भी बढ़कर समझना चाहिये।

२—अपने आचरण की पूरी देख रेख रक्खो, क्योंकि तुम जगत में कहीं भी खोजो, सदाचार से बढ़कर पक्का मित्र कहीं न मिलेगा।

३—सदाचार सम्मानित परिवार को प्रकट करता है, परन्तु दुराचार कलङ्कित लोगों की श्रेणी में जा बैठाता है।

४—धर्मशास्त्र भी यदि विस्मृत हो जाएँ तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं, परन्तु सदाचार से स्खलित हो गया तो सदा के लिए अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

५—सुख-समृद्धि, ईर्ष्या करने वालों के लिए नहीं है, ठीक इसी तरह गौरव दुराचारियों के लिए नहीं है।

६—दृढ़-प्रतिज्ञ सदाचार से कभी भ्रष्ट नहीं होते, क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रकार भ्रष्ट होने से कितनी आपत्तियाँ आती हैं।

७—मनुष्यसमाज में सदाचारी पुरुष का

सम्मान होता है, लेकिन जो लोग सन्मार्ग से च्युत हो जाते हैं, अपकीर्ति और अपमान ही उनके भाग्य में रह जाते हैं।

८—सदाचार सुख-सम्पत्ति का बीज बोता है, परन्तु दुष्ट-प्रवृत्ति असीम आपत्तियों की जननी है।

९—अवाच्य तथा अपशब्द, भूल कर भी संयमी पुरुष के मुख से नहीं निकलेंगे।

१०—मूर्खों को जो चाहो तुम सिखा सकते हो किन्तु सन्मार्ग पर चलना वे कभी नहीं सीख सकते।

परिच्छेद १५

परस्त्रीत्याग

१—जिन लोगों की दृष्टि धर्म तथा धन पर रहती है वे कभी चूक कर भी परस्त्री की कामना नहीं करते।

२—जो लोग धर्म से गिर गये हैं उनमें उस पुरुष से बढ़ कर मूर्ख और कोई नहीं है जो कि पड़ोसी की ड्योढ़ी पर खड़ा होता है।

३—निस्सन्देह वे लोग काल के मुख में हैं कि जो सन्देह न करने वाले मित्र के घर पर हमला करते हैं।

४—मनुष्य चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर उसकी श्रेष्ठता किस काम की जबकि वह व्यभिचारजन्य लज्जा का कुछ भी विचार न कर परस्त्री गमन करता है।

५—जो पुरुष अपने पड़ौसी की स्त्री को गले लगाता है इसलिए कि वह उसे सहज में मिल जाती है, उसका नाम सदा के लिए कलङ्कित हुआ समझो।

६—व्यभिचारी को इन चार बातों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप, भ्रम और कलङ्क।

७—सद्गृहस्थ वही है जिसका हृदय अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य तथा लावण्य से आकृष्ट नहीं होता।

८—धन्य है उसके पुरुषत्व को जो पराई स्त्री पर दृष्टि भी नहीं डालता, वह केवल श्रेष्ठ और धर्मात्मा ही नहीं, सन्त है।

६—पृथ्वी पर की सब उत्तम बातों का पात्र कौन है? वही कि जो पराई स्त्री को बाहु-पाश में नहीं लेता।

१०—तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो पर तुम्हारे पक्ष में यही श्रेयस्कर है कि तुम पड़ोसी की स्त्री से सदा दूर रहो।

परिच्छेद १६

क्षमा

१—धरती उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं। इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं, क्योंकि बड़प्पन इसी में है।

२—दूसरे लोग तुम्हें हानि पहुँचाएँ उसके लिये तुम उन्हें क्षमा कर दो, और यदि तुम उसे भुला सको तो यह और भी अच्छा है।

३—अतिथि-सत्कार से विमुख होना ही सबसे बड़ी दरिद्रता है और मूर्खों की असभ्यता को सह लेना ही सबसे बड़ी वीरता है।

४—यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो तो सबके प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५—जो पीड़ा देने वालों को बदले में पीड़ा देते हैं बुद्धिमान लोग उनको मान नहीं देते, किन्तु जो अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं वे स्वर्ण के समान बहुमूल्य समझे जाते हैं।

६—बदला लेने का आनन्द तो एक ही दिन होता है, किन्तु क्षमा करने वाले का गौरव सदा स्थिर रहता है।

७—क्षति चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न उठानी पड़ी हो परन्तु बड़प्पन इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लावे और बदला लेने के विचार से दूर रहे।

८—घमंड में चूर होकर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है उन्हें अपने उच्च वर्ताव से जीत लो।

९—संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है।

१०—उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निस्सन्देह महान् हैं, पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

परिच्छेद १७

ईर्ष्यात्याग

१—ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो, क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अंग है।

२—सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरा और कोई बड़ा वरदान नहीं है।

३—जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता, वही अपने पड़ौसी की समृद्धि पर डाह करता है।

४—समझदार लोग ईर्ष्याबुद्धि से दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते, क्योंकि उससे जो खोटा परिणाम होता है, उसे वे जानते हैं।

५—ईर्ष्यालु के लिए ईर्षा ही पूरी बला है, क्योंकि उसके वैरी उसे चाहे क्षमा भी कर दें तो भी वह उसका सर्वनाश ही करेगी।

६—जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता, उसका कुटुम्ब रोटी और कपड़ों तक के लिए मारा मारा फिरेगा और नष्ट हो जायगा।

७—लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती, वह उसको अपनी बड़ी बहिन दरिद्रता की देखरेख में छोड़कर चली जायगी।

८—दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है।

९—ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदारचित्त पुरुषों की कंगाली ये दोनों ही एक समान आश्चर्य-जनक हैं।

१०—न तो ईर्ष्या से कभी कोई फूला फला है और न उदारहृदय कभी वैभव से हीन ही रहा।

परिच्छेद १८

निर्लोभिता

१—जो पुरुष सन्मार्ग छोड़ कर दूसरे की सम्पत्ति लेना चाहता है उसकी दुष्टता बढ़ती जायगी और उसका परिवार क्षीण हो जायगा।

२—जो पुरुष बुराई से विमुख रहते हैं वे लोभ नहीं करते और न दुष्कर्मों की ओर ही प्रवृत्त होते हैं।

३—जो मनुष्य अन्य लोगों को सुखी देखना चाहते हैं, वे छोटे मोटे सुखों का लोभ नहीं करते और न अनीति का ही काम करते हैं।

४—जिन्होंने अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जिनकी दृष्टि विशाल है, वे यह कह कर दूसरे की वस्तुओं की कामना नहीं करते, ओ हो हमें इनकी अपेक्षा है।

५—वह बुद्धिमान् और समझदार मन किस काम का जो लालच में फँस जाता है और अविचार के कामों के लिए उतारू होता है।

६—वे लोग भी जो सुयश के भूखे हैं और सन्मार्ग पर चलते हैं, नष्ट हो जायेंगे, यदि धन के फेर में पड़ कर कोई कुचक्र रचेंगे।

७—लालच द्वारा एकत्र किये हुए धन की कामना मत करो, क्योंकि भोगने के समय उसका फल तीखा होगा।

८—यदि तुम चाहते हो कि हमारी सम्पत्ति कम न हो तो तुम अपने पड़ौसी के धन-वैभव को ग्रसने की कामना मत करो।

९—जो बुद्धिमान् मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरों की वस्तुओं को लेना नहीं चाहता, लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती है और उसे ढूंढ़ती हुई उसके घर जाती है।

१०—दूरदर्शिताहीन लालच नाश का कारण होता है, पर जो, यह कहता है कि मुझे किसी वस्तु की आकांक्षा ही नहीं, उस तृष्णाविजयी की 'महत्ता' सर्वविजयी होती है।

परिच्छेद १९

चुगली से घृणा

१—जो मनुष्य सदा अन्याय करता है और न्याय का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है, जब कोई कहता है—देखो, यह आदमी किसी की चुगली नहीं खाता।

२—सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निस्संदेह बुरा है, पर मुख पर हँस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उससे भी बुरा है।

३—झूठ और चुगली के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो तत्काल ही मर जाना अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार मर जाने से शुभकर्म का फल मिलेगा।

४—पीठ पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुख पर ही तुम्हें गाली दी हो।

५—मुख से चाहे कोई कितनी ही धर्म कर्म की बातें करे पर उसकी चुगलखोर जिह्वा उसके हृदय की नीचता को प्रकट कर ही देती है।

६—यदि तुम दूसरे की चुगली करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोज कर उनमें से बुरे से बुरे दोषों को प्रकट कर देगा।

७—जो मधुर बचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते वे चुगली करके फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक दूसरे से जुदा कर देते हैं।

८—जो लोग अपने मित्रों के दोषों को स्पष्ट रूप से सबके सामने कहते हैं, वे अपने वैरियों के दोषों को भला कैसे छोड़ेंगे ?

६—पृथ्वी अपनी छाती पर निन्दा करने वाले के पदाघात को धैर्य के साथ किस प्रकार सहन करती है ! क्या चुगलखोर के भार से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए ही धर्म की ओर बार बार झुकती है।

१०—यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी प्रकार करे जिस प्रकार कि वह अपने वैरियों के दोषों की करता है, तो क्या उसे कभी कोई दोष स्पर्श कर सकेगा ?

परिच्छेद २०

व्यर्थ-भाषण

१—निरर्थक शब्दों से जो अपने श्रोताओं में उद्वेग लाता है वह सब के तिरस्कार का पात्र है।

२—अपने मित्रों को दुःख देने की अपेक्षा भी अनेक लोगों के आगे व्यर्थ की बकवाद करना बहुत बुरा है।

३—जो निरर्थक शब्दों का आडम्बर फैलाता है वह अपनी अयोग्यता को ऊँचे स्वर से घोषित करता है।

४—सभा में जो व्यर्थ की बकवाद करता है, उस मनुष्य को देखो, उसे और कुछ तो लाभ होने का नहीं, पर जो कुछ उसके पास अच्छी बातें होंगी वे भी छोड़कर चली जावेंगी।

५—यदि व्यर्थ की बकवाद अच्छे लोग भी करने लगें तो वे भी अपने मान और आदर को खो बैठेंगे।

६—जिसे निरर्थक बातों को करने की अभिरुचि है उसे मनुष्य ही न मानना चाहिए, कदाचित् उससे भी कोई काम आ पड़े तो समझदार आदमी उससे कचरे के समान ही काम ले ले।

७—यदि समझदार को योग्य मालूम पड़े तो मुख से कठोर शब्द कहले, क्योंकि यह निरर्थक भाषण से

कहीं अच्छा है।

८—जिनके विचार बड़े-बड़े प्रश्नों को हल करने में लगे रहते हैं ऐसे लोग विकथा के शब्द अपने मुख से निकालते ही नहीं।

९—जिनकी दृष्टि विस्तृत है वे भूल कर भी निरर्थक शब्दों का उच्चारण नहीं करते।

१०—मुख से निकालने योग्य शब्दों का ही तू उच्चारण कर, परन्तु निरर्थक अर्थात् निष्फल शब्द मुख से मत निकाल।

परिच्छेद २१

पापकर्मों से भय

१—दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते जिसे पाप कहते हैं, परन्तु भद्रजन उससे सदा दूर भागते हैं।

२—पाप से पाप उत्पन्न होता है, इसलिए आग से भी बढ़ कर उससे डरना चाहिए।

३—कहते हैं कि सबसे बड़ी बुद्धिमानी यही है कि शत्रु को भी हानि पहुँचाने से परहेज किया जाये।

४—भूल से भी दूसरे के सर्वनाश का विचार न करो, क्योंकि न्याय उसके विनाश की युक्ति सोचता है जो दूसरे के साथ बुराई करना चाहता है।

५—"मैं गरीब हूँ" ऐसा कहकर किसी को पापकर्म में लिप्त न होना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह और भी नीची दशा को पहुँच जायेगा।

६—जो मनुष्य आपत्तियों द्वारा विषाद में पड़ना नहीं चाहता, उसे दूसरों का अपकार करने से बचना चाहिए।

७—दूसरे प्रकार के सब शत्रुओं से बचने का उपाय हो सकता है, पर पापकर्मों का कभी विनाश नहीं होता, वे पापी का पीछा करके उसको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ते।

८—जिस प्रकार छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहां जहां वह जाता है उसके पीछे पीछे लगी रहती है, बस ठीक इसी प्रकार पापकर्म पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

९—यदि किसी को अपनी आत्मा से प्रेम है तो उसे पाप की ओर किंचित् भी न झुकना चाहिए।

१०—उसे आपत्तियों से सदा सुरक्षित समझो जो अनुचित कर्म करने के लिए सन्मार्ग को नहीं छोड़ता।

परिच्छेद २२

परोपकार

१—महान् पुरुष जो उपकार करते हैं उसका बदला नहीं चाहते। भला संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस भाँति चुका सकता है?

२—योग्य पुरुष अपने हाथों से परिश्रम करके जो धन जमा करते हैं, वह सब जीवमात्र के उपकार के लिए ही होता है।

३—हार्दिक उपकार से बढ़कर न तो कोई चीज इस भूतल में मिल सकती है और न स्वर्ग में।

४—जिसे उचित अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है और जिसे योग्य अयोग्य का ज्ञान नहीं हुआ उसकी गणना मृतकों में की जायेगी।

५—लबालब भरे हुए गाँव के तालाब को देखो, जो मनुष्य सृष्टि से प्रेम करता है उसकी सम्पत्ति उसी तालाब के समान है।

६—सहृदय व्यक्ति का वैभव गाँव के बीचो बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

७—परोपकारी के हाथ का धन उस वृक्ष के समान है जो औषधियों का सामान देता है और सदा हरा

बना रहता है।

८—देखो, जिन लोगों को उचित और योग्य बातों का ज्ञान है, वे बुरे दिन आने पर भी दूसरों का उपकार करने से नहीं चूकते।

९—परोपकारी पुरुष उसी समय अपने को गरीब समझता है जबकि वह सहायता माँगने वालों की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ होता है।

१०—यदि परोपकार करने के फलस्वरूप सर्वनाश उपस्थित हो, तो दासत्व में फँसने के लिए आत्म-विक्रय करके भी उसको सम्पादन करना उचित है।

परिच्छेद २३

दान

१—गरीबों को देना ही दान है, और सब तरह का देना उधार देने के समान है।

२—दान लेना बुरा है चाहे उससे स्वर्ग ही क्यों न मिलता हो और दान देने वाले के लिए चाहे स्वर्ग का द्वार ही क्यों न बन्द हो जाये, फिर भी दान देना धर्म है।

३—"हमारे पास नहीं है" ऐसा कहे बिना दान देने वाला पुरुष ही केवल कुलीन होता है।

४—याचक के ओठों पर सन्तोषजनित हँसी की रेखा देखे बिना दानी का मन प्रसन्न नहीं होता।

५—आत्म-जयी की विजयों में श्रेष्ठ जय है भूख को जीतना, पर उसकी विजय से भी बढ़कर उस मनुष्य की विजय है जो दूसरे की क्षुधा को शान्त करता है।

६—गरीबों के पेट की ज्वाला को शान्त करने का यही एक मार्ग है कि जिससे श्रीमानों को अपने पास विशेष करके धनसंग्रह कर रखना चाहिए।

७—जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बांट कर खाता है उसको भूख की भयानक बीमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

८—वे निष्ठुर कृपण लोग जो धनसंग्रह कर करके उसको निकम्मा करते हैं, क्या उन्होंने कभी दूसरों को दान देने का आनन्द ही नहीं लिया?

९—भिक्षान्न से भी बढ़कर अप्रिय उस कंजूस का भोजन है जो अकेला बैठ कर खाता है।

१०—मृत्यु से बढ़ कर और कोई कड़वी बात नहीं, परन्तु मृत्यु भी उस समय मीठी लगती है जब किसी में दान की सामर्थ्य नहीं रहती।

परिच्छेद २४

कीर्ति

१—गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ, मनुष्य के लिए इससे बढ़कर लाभ और किसी में नहीं है।

२—प्रशंसा करने वालों के मुख पर सदा उन लोगों का नाम रहता है कि जो गरीबों को दान देते हैं।

३—जगत् में और सब वस्तुएँ नश्वर हैं, परन्तु एक अतुलकीर्ति ही मनुष्य की नश्वर नहीं है।

४—देखो, जिस मनुष्य ने दिगन्तव्यापी स्थायी कीर्ति पायी है, स्वर्ग में देवता लोग उसे साधु-सन्तों से भी बढ़ कर मानते हैं।

५—वह विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और वह मृत्यु जिससे लोकोत्तर यश की प्राप्ति हो, ये दोनों महान् आत्म-बलशाली पुरुषों के मार्ग में ही आती हैं।

६—यदि मनुष्य को जगत् में पैदा ही होना है तो उसको चाहिए कि वह सुयश उपार्जन करे। जो ऐसा नहीं करता उसके लिए तो यही अच्छा था कि वह जन्म ही न लेता।

७—जो लोग दोषों से सर्वथा रहित नहीं हैं वे स्वयं निज पर तो नहीं बिगड़ते, फिर वे अपनी निन्दा करने

वालों पर क्यों क्रुद्ध होते हैं ?

८—निस्सन्देह यह मनुष्यों के लिए बड़ी ही लज्जा की बात है कि वे उस चिरस्मृति का सम्पादन नहीं करते जिसे लोग कीर्ति कहते हैं।

९—बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो, उसकी समृद्धि भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे धीरे नष्ट हो जायगी।

१०—वही लोग जीते हैं जो निष्कलंक जीवन व्यतीत करते हैं और जिन का जीवन कीर्तिविहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दे हैं।

परिच्छेद २५

दया

१—दया से लबालब भरा हुआ **हृदय** ही संसार में सबसे बड़ी सम्पत्ति है क्योंकि **भौतिक विभूति तो नीच मनुष्यों** के पास भी देखी जाती है।

२—ठीक पद्धति से सोच विचार कर **हृदय में दया धारण** करो और यदि तुम सभी धर्मों से इस बारे में पूछ कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि **दया ही एकमात्र** मुक्ति का साधन है।

३—जिन लोगों का **हृदय दया से ओत प्रोत** है वे अंधकारपूर्ण नरक में प्रवेश न करेंगे।

४—जो मनुष्य सब जीवों पर कृपा तथा दया दिखलाता है उसे उन पापपरिणामों को नहीं भोगना पड़ता जिन्हें देखकर ही आत्ता काँप उठती है।

५—क्लेश दयालु पुरुषों के लिए नहीं है, वातबलय-वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

६—खेद है उस आदमी पर जिसने **दया धर्म को त्याग** दिया है और पाप के फल को भोग कर भी उसे भूल गया है।

७—जिस प्रकार यह लोक धनहीन के लिए

नहीं, उसी प्रकार परलोक निर्दयी मनुष्य के लिए नहीं है।

८—ऐहिक वैभव से शून्य, गरीब लोग तो किसी दिन समृद्धिशाली हो सकते हैं परन्तु जो लोग दया और ममता से रहित हैं सचमुच ही वे कंगाल हैं और उनके सुदिन कभी नहीं फिरते।

९—विकार ग्रस्त मनुष्य के लिए सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर हृदय वाले पुरुष के लिए नीति के काम करना भी उतना ही आसान है।

१०—जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिए उद्यत हो तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम काँपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

परिच्छेद २६

निरामिष जीवन

१—भला उसके मन में दया कैसे आयेगी जो अपना मांस बढ़ाने के लिए दूसरों का मांस खाता है ?

२—व्यर्थव्ययी के पास जैसे सम्पत्ति नहीं ठहरती, ठीक वैसे ही मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

३—जो मनुष्य मांस चखता है उसका हृदय शस्त्रधारी मनुष्य के हृदय के समान शुभकर्म की ओर नहीं झुकता।

४—जीवों की हत्या करना निस्सन्देह क्रूरता है, पर उनका मांस खाना तो सर्वथा पाप है।

५—मांस न खाने में ही जीवन है। यदि तुम खाओगे तो नरक का द्वार तुम्हें बाहर निकल जाने देने के लिए कभी नहीं खुलेगा।

६—यदि लोग मांस खाने की इच्छा ही न करें तो जगत् में उसे बेचने वाला कोई आदमी ही न रहेगा।

७—यदि मनुष्य दूसरे प्राणियों की पीड़ा और यन्त्रणा को एक बार समझ सके, तो फिर वह कभी मांस भक्षण की इच्छा ही न करेगा।

८—जो लोग माया और मूढ़ता के फन्दे से निकल गये हैं वे लाश को नहीं खाते।

९—प्राणियों की हिंसा व मांसभक्षण से विरक्त होना सैकड़ों यज्ञों में बलि व आहुति देने से बढ़ कर है।

१०—देखो, जो पुरुष हिंसा नहीं करता और मांस न खाने का व्रती है, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसका सम्मान करता है।

परिच्छेद २७

तप

१—शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना, बस इन्हीं में तपस्या का समस्त सार है ।

२—तपस्या तेजस्वी लोगों के लिए ही है दूसरे लोगों का तप करना निरर्थक है ।

३—तपस्वियों को आहारदान तथा उनकी सेवा शुश्रूषा के लिए भी कुछ लोग आवश्यक हैं क्या इसी विचार से इतर लोगों ने तप करना स्थगित कर रखा है ।

४—यदि तुम अपने शत्रुओं का नाश करना और उन लोगों को उन्नत बनाना चाहते हो जो तुम्हें प्रेम करते हैं, तो जान रक्खो कि यह शक्ति तप में है ।

५—तप समस्त कामनाओं को यथेष्ठ रूप से पूर्ण कर देता है, इसीलिए लोक जगत में तपस्या के लिए उद्योग करते हैं ।

६—जो लोग तपस्या करते हैं वे ही वास्तव में अपना भला करते हैं और सब तो लालसा के जाल में फँसे हुए हैं जो अपने को केवल हानि ही पहुँचाते हैं ।

७—सोने को जिस आग में पिघलाते हैं वह जितनी ही अधिक तेज होती है सोने का रंग उतना ही अधिक

उज्ज्वल निकलता है। ठीक इसी तरह तपस्वी जितने ही बड़े कष्टों को सहता है उसके उतने ही अधिक आत्मिक भाव निर्मल होते हैं।

८—देखो, जिसने अपने पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है उस पुरुषोत्तम को सभी लोग पूजते हैं।

९—देखो, जिन लोगों ने तप करके शक्ति और सिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मृत्यु को जीतने में भी सफल हो सकते हैं।

१०—यदि जगत् में दोनों की संख्या अधिक है तो इसका कारण यही है कि वे लोग जो तप करते हैं थोड़े हैं और जो तप नहीं करते हैं उनकी संख्या अधिक है।

परिच्छेद २८

धूर्तता

१—स्वयं उसके ही शरीर के पँच तत्त्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जबकि वे पाखण्डी के पाखण्ड और चालबाजी को देखते हैं।

२—वह प्रभावशाली मुखमुद्रा किस काम की, जबकि अंतःकरण में बुराई भरी है और हृदय इस बात को जानता है।

३—वह कापुरुष जो तपस्वी जैसी तेजस्वी आकृति बनाये रखता है उस गधे के समान है जो सिंह की खाल पहिने हुये घास चरता है।

४—उस आदमी को देखो, जो धर्मात्मा के वेश में छुपा रहता है और दुष्कर्म करता है। वह उस बहेलिये के समान है जो झाड़ी पीछे छुप कर चिड़ियों को पकड़ता है।

५—दंभी आदमी दिखावे के लिए पवित्र बनता है और कहता है—मैंने अपनी इच्छाओं, इन्द्रिय-लालसाओं को जीत लिया है, परन्तु अन्त में वह पश्चात्ताप करेगा और रो रो कर कहेगा—मैंने क्या किया, हाय मैंने क्या किया ?

६—देखो, जो पुरुष वास्तव में अपने मन से तो किसी वस्तु को छोड़ता नहीं, परन्तु बाहर त्याग का

आडम्बर रचता है और लोगों को ठगता है, उससे बढ़ कर कठोर हृदय कोई नहीं है।

७—गुमची देखने में सुन्दर होती है, परन्तु उसकी दूसरी ओर कालिमा होती है। कुछ आदमी भी उसी की तरह होते हैं। उनका बाहिरी रूप तो सुन्दर होता है, किन्तु अंतःकरण बिल्कुल कलुषित होता है।

८—ऐसे लोग बहुत हैं कि जिनका हृदय तो अशुद्ध होता है पर तीर्थों में स्नान करते हुए घूमते फिरते हैं।

९—वाण सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन होता है इसलिए मनुष्यों को आकृति से नहीं, किन्तु उनके कामों से पहचानो।

१०—जगत् जिससे घृणा करता है यदि तुम उससे बचे हुए हो तो फिर न तुम्हें जटा रखने की आवश्यकता है और न मुण्डन की।

परिच्छेद २६

निष्कपट व्यवहार

१—जो यह चाहता है कि वह घृणित न समझा जावे तो उसे स्वयं कपटपूर्ण विचारों से अपने आपको बचाना चाहिए।

२—अपने मन में यह विचारना पाप है कि मैं अपने पड़ौसी की सम्पत्ति को कपट द्वारा ले लूंगा।

३—वह वैभव जो कपट द्वारा प्राप्त किया जाता है भले ही बढ़ती की ओर दिखाई देता हो, परन्तु अन्त में नष्ट होने को ही है।

४—अपहरण की प्यास अपने उन्नतिकाल में भी अनन्त दुःखों की ओर ले जाती है।

५—जो मनुष्य दूसरों की सम्पत्ति को लोभ-भरी दृष्टि से देखता है और उसको हड़पने की प्रतीक्षा में बैठा रहता है उसके हृदय में दया को कोई स्थान नहीं और प्रेम तो उससे कोसों दूर है।

६—लूट के पश्चात् जिस मनुष्य को लोभ की प्यास बनी रहती है वह वस्तुओं का उचित मूल्य नहीं समझ सकता और न वह सत्यमार्ग का पथिक ही बन सकता है।

७—वह मनुष्य धन्य है जिसने सांसारिक वस्तुओं के सार को समझ कर अपने हृदय को दृढ़ बना लिया है। वह फिर अपने पड़ौसी को धोखा देने की गलती कभी नहीं करेगा।

८—जिस प्रकार तत्वज्ञानी साधु सन्तों के हृदय में सत्यता निवास करती है उसी प्रकार चोर ठगों के मन में कपट का वास नियम से होता है।

९—उस मनुष्य पर तरस आता है जो छल तथा कपट के अतिरिक्त और किसी बात पर विचार ही नहीं करता, वह सत्यमार्ग को छोड़ देगा और नाश को प्राप्त होगा।

१०—जो दूसरों को छलता है वह स्वयं अपने शरीर का भी स्वामी नहीं रहने पाता, एरन्तु जो सच्चे हैं उनको स्वर्ग का नित्य उत्तराधिकार रहता है।

परिच्छेद ३०

सत्यता

१—सचाई क्या है ? जिससे दूसरों को कुछ भी हानि न पहुँचे उस बात का बोलना ही सचाई है।

२—उस झूठ में भी सत्यता की विशेषता है जिसके परिणाम में नियम से भलाई ही होती है।

३—जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो, क्योंकि झूठ बोलने से स्वयं तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी।

४—देखो, जिस मनुष्य का मन असत्य से अपवित्र नहीं है, वह सबके हृदय पर शासन करेगा।

५—जिसका मन सत्यशीलता में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ है।

६—मनुष्य के लिए इससे बढ़ कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये विना ही सब तरह की सिद्धियों को पा जाता है।

७—"असत्यभाषण मत करो" यदि मनुष्य इस आदेश का पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों के पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

८— शरीर की स्वच्छता का सम्बन्ध तो जल से है, परन्तु मन की पवित्रता सत्यभाषण से सिद्ध होती है।

९—योग्य पुरुष और सब प्रकार के प्रकाशों को प्रकाश ही नहीं मानते, केवल सत्य की ज्योति को ही वे सच्चा प्रकाश मानते हैं।

१०—मैंने संसार में बहुत सी वस्तुएँ देखी हैं, परन्तु उनमें सत्य से बढ़ कर उच्च और कोई वस्तु नहीं है।

परिच्छेद ३१

क्रोध त्याग

१—जिसमें चोट पहुँचाने की शक्ति है उसी में सहनशीलता का होना समझा जा सकता है। जिसमें शक्ति ही नहीं है वह क्षमा करे या न करे, उससे किसी का क्या बनता बिगड़ता है ?

२—यदि तुम में प्रहार करने की शक्ति न भी हो तब भी क्रोध करना बुरा है और यदि तुम में शक्ति हो तब तो क्रोध से बढ़ कर बुरा काम और कोई नहीं है।

३—तुम्हारा अपराधी कोई भी हो, पर उसके ऊपर कोप न करो, क्योंकि क्रोध से सैकड़ों अनर्थ पैदा होते हैं।

४—क्रोध हर्ष को जला देता है और उल्लास को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़ कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है ?

५—यदि तुम अपना भला चाहते हो तो रोष से दूर रहो, क्योंकि दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।

६—अग्नि उसी को जलाती है जो उसके पास जाता है, परन्तु क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

७—जो क्रोध को इस प्रकार हृदय में रखता है

मानो वह बहुमूल्य पदार्थ हो वह उस मनुष्य के समान है जो जोर से पृथ्वी पर हाथ दे मारता है उस आदमी के हाथों में चोट लगे बिना नहीं रह सकती. ऐसे क्रोधी पुरुष का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

८—जो तुम्हें हानि पहुँची है वह भले ही तुम्हें प्रचण्ड अग्नि के समान जला रही हो तब भी यही अच्छा है कि तुम क्रोध से दूर रहो।

९—मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरन्तही पूर्ण हो जाया करें यदि अपने मन से क्रोध को दूर कर दे।

१०—जो क्रोध के मारे आपे से बाहर है वह मृतक के समान है, पर जिसने कोप करना त्याग दिया है वह सन्तों के समान है।

परिच्छेद ३२

उपद्रव-त्याग

१—शुद्धांतःकरण वाला मनुष्य कुवेर की सम्पत्ति मिले तो भी किसी को त्रास देने वाला नहीं बनेगा।

२—द्वेषबुद्धि से प्रेरित होकर यदि कोई दूसरा आदमी उसे कष्ट देवे तो भी पवित्रहृदय का व्यक्ति उसे उसका बदला नहीं देता।

३—यदि बिना किसी छेड़खानी के तुम्हें किसी ने कोई कष्ट दिया है और बदले में तुम भी उसे वैसा ही कष्ट दोगे तो अपने ऊपर ऐसे घोर संकटों को खींच लोगे जिनका फिर कोई उपचार नहीं।

४—दुःख देने वाले व्यक्ति को शिक्षा अर्थात् दण्ड देने का यह ही एक उत्तम उपाय है कि तुम उसके बदले में भलाई करो, जिससे वह मन ही मन लज्जा के मारे मर जावे, यह ही उससे बड़ी गहरी मार है।

५—दूसरे प्राणियों के दुःख को जो अपने दुःख के समान ही नहीं समझता और इसीलिए वह दूसरों को कष्ट देने से विमुख नहीं होता, ऐसे मनुष्य की बुद्धिमत्ता का क्या उपयोग ?

६—स्वयं एक बार दुःखों को भोग कर मनुष्य

को फिर वैसे कष्ट दूसरों को न देने का ध्यान रखना चाहिए।

७—यदि तुम जानबूझकर किसी प्राणी को थोड़ा सा भी दुःख नहीं देते हो, तो यह बड़ी श्लाघा की बात है।

८—स्वयं कष्ट आपड़ने पर कैसी वेदना होती है, ऐसा जिसको अनुभव है वह दूसरों को दुःख देने के लिए कैसे उतारू होगा ?

९—यदि कोई मनुष्य अपने किसी पड़ौसी को दोपहर को दुःख देता है तो उसी दिन तीसरे पहर ही उसके ऊपर विपत्तियाँ अपने आप आ टूटेंगी।

१०—दुष्कर्म करने वालों के शिर के ऊपर विपत्तियाँ सदैव आया ही करती हैं, इसलिए जो मनुष्य दुःखदाई अनिष्टों से बचना चाहते हैं वे आप ही दुष्कृत्यों से सदैव अलग रहते हैं।

परिच्छेद ३३

अहिंसा

१—अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे सब प्रकार के पाप लगे रहते हैं।

२—क्षुधावादितों के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना, यह सब धर्म उपदेष्टाओं के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश हैं।

३—अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सचाई की श्रेणि उसके पश्चात् है।

४—सन्मार्ग कौन सा है? यह वही मार्ग है जिसमें छोटे से छोटे जीव की रक्षा का पूरा ध्यान रक्खा जावे।

५—जिन लोगों ने इस पापमय सांसारिक जीवन को त्याग दिया है उन सब में मुख्य वह पुरुष है जो हिंसा के पाप से डर कर अहिंसामार्ग का अनुसरण करता है।

६—धन्य है वह पुरुष जिसने अहिंसाव्रत धारण किया है। मृत्यु जो सब जीवों को खा जाती है उसके सुदिनों पर हमला नहीं करती।

७—तुम्हारे प्राण संकट में भी पड़ जावें तब भी किसी की प्यारी जान मत लो।

८—लोग कहते हैं कि बलि देने से बहुत सारे वरदान मिलते हैं, परन्तु पवित्रहृदय वालों की दृष्टि में वे वरदान जो हिंसा करने से मिलते है जघन्य और घृणास्पद हैं।

९—जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में वे मृतकभोजी के समान हैं।

१०—देखो, वह आदमी जिसका सड़ा हुआ शरीर पीवदार घावों से भरा हुआ है, वह पिछले भवों में रक्तपात बहाने वाला रहा होगा, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं।

परिच्छेद ३४

संसार की अनित्यता

१—उस मोह से बढ़ कर मूर्खता की बात और कोई नहीं है कि जिसके कारण अस्थायी पदार्थों को मनुष्य स्थिर और नित्य समझ बैठता है।

२—धनोपार्जन करना खेल देखने के लिए आयी हुई भीड़ के सदृश है और धन का क्षय उस भीड़ के तितर-बितर हो जाने के समान है।

३—समृद्धि क्षणस्थायी है। यदि तुम समृद्धि-शाली हो गये हो तो ऐसे काम करने में देर न करो जिनसे स्थायी लाभ पहुँच सकता है।

४—समय देखने में भोला भाला और निर्दोष मालूम होता है, परन्तु वास्तव में वह एक आरा है जो मनुष्य के जीवन को बराबर काट रहा है।

५—पवित्र काम करने में शीघ्रता करो, ऐसा न हो कि बोली बन्द हो जाय और हिचकियाँ आने लगें।

६—कल तो एक आदमी विद्यमान था और आज वह नहीं है, संसार में यही बड़े अचरज की बात है।

७—मनुष्य को इस बात का तो पता नहीं कि पल भर के पश्चात् वह जीवित रहेगा या नहीं, पर उसके

विचारों को देखो तो वे करोड़ों की संख्या में चल रहे हैं।

८—पंख निकलते ही चिड़िया का बच्चा फूटे हुए अण्डे को छोड़ कर उड़ जाता है। शरीर और आत्मा की पारस्परिक मित्रता का यही दृष्टान्त है।

९—मृत्यु नींद के समान है और जीवन उस निद्रा से जागने के तुल्य है।

१०—क्या आत्मा का अपना कोई निजि घर नहीं है, जो वह इस निकृष्ट शरीर में आश्रय लेता है ?

परिच्छेद ३५

त्याग

१—मनुष्य ने जो वस्तु छोड़ दी है उससे पैदा होने वाले दुःख से उसने अपने को मुक्त कर लिया है।

२—त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिए यदि तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहते हो तो शीघ्र त्याग करो।

३—अपनी पाँचों इन्द्रियों का दमन करो और जिन पदार्थों से तुम्हें सुख मिलता है उन्हें बिल्कुल ही त्याग दो।

४—अपने पास कुछ भी न रखना यही व्रत-धारी का नियम है। एक वस्तु को भी अपने पास रखना मानों उन बन्धनों में फिर आ फँसना है जिन्हें मनुष्य एक बार छोड़ चुका है।

५—जो लोग पुनर्जन्म के चक्र को बन्द करना चाहते हैं, उनके लिए यह शरीर भी अनावश्यक है। फिर भला अन्य बन्धन कितने अनावश्यक न होंगे ?

६—'मैं' और 'मेरे' के जो भाव हैं, वे घमण्ड और स्वार्थपूर्णता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। जो मनुष्य उनका दमन कर लेता है वह देवलोक से भी उच्च लोक को

प्राप्त होता है।

७—देखो, जो मनुष्य लालच में फँसा हुआ है और उससे निकलना नहीं चाहता, उसे दुःख आकर घेर लेगा और फिर मुक्त न होगा।

८— जिन लोगों ने सब कुछ त्याग दिया है, वे मुक्ति के मार्ग में हैं, परन्तु अन्य सब मोहजाल में फँसे हुए हैं।

९—ज्यों ही लोभ-मोह दूर हो जाते हैं त्यों ही उसी क्षण पुनर्जन्म बन्द हो जाता है। जो मनुष्य इन बन्धनों को नहीं काटते वे भ्रमजाल में फँसे रहते हैं।

१०—उस ईश्वर की शरण में जाओ जिसने सब मोहों को छिन्न भिन्न कर दिया और उसी का आश्रय लो जिससे सब बन्धन टूट जायें।

परिच्छेद ३६

सत्य का अनुभव

१—मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दु:खमय जीवन भोगना पड़ता है।

२—जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और उसकी दृष्टि निर्मल है उसके लिए दु:ख और अन्धकार का अन्त हो जाता है तथा आनन्द उसे प्राप्त होता है।

३—जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और सत्य अर्थात् आत्मा को पा लिया है, उसके लिए स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है।

४—मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, यदि आत्मा ने सत्य का आश्वासन नहीं किया।

५—कोई भी बात हो, उसमें सत्य को झूठ से पृथक कर देना ही मेधा का कर्त्तव्य है।

६—वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरता पूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है। वह ऐसे मार्ग से चलेगा जिससे उसे इस संसार में न आना पड़ेगा।

७—निस्सन्देह जिन लोगों ने ध्यान और धारणा के द्वारा सत्य को पा लिया है उन्हें आगे होने वाले

भवों का विचार करने की आवश्यकता नहीं।

८—जन्मों की जननी-अविद्या से छुटकारा पाना और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करना ही बुद्धिमानी है।

९—देखो, जो पुरुष मुक्ति के साधनों को जानता है और सब मोहों को जीतने का प्रयत्न करता है, भविष्य में आने वाले सब दुःख उससे दूर हो जाते हैं।

१०—काम, क्रोध और मोह ज्यों ज्यों मनुष्य को छोड़ते जाते हैं, दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं।

परिच्छेद ३७

कामना का दमन

१—कामना एक बीज है जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत कभी न चूकने वाली जन्म मरण की फसल प्रदान करता है।

२—यदि तुम्हें किसी बात की कामना करनी ही है तो पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो और वह छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम कामना को जीतने की इच्छा करोगे।

३—निष्कामवृत्ति से बढ़कर इस जगत् में दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है और तुम स्वर्ग में भी जाओ तो तुम्हें ऐसी अमूल्य निधि न मिलेगी जो इसकी तुलना करे।

४—कामना से मुक्त होने के सिवाय पवित्रता और कुछ नहीं है और यह मुक्ति पूर्णसत्य (शुद्ध आत्मा) की इच्छा करने से ही मिलती है।

५—वही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है, बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं, पर वास्तव में वे कर्मबन्धन से जकड़े हुए हैं।

६—यदि तुम भद्रता को चाहते हो तो कामना से दूर रहो, क्योंकि कामना एक जाल और निराशामात्र है।

७—यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त वासनाओं को सर्वथा त्याग दे तो जिस मार्ग से आने की वह आज्ञा देता है मुक्ति उसी मार्ग से आकर उससे मिलती है।

८—जो किसी बात की लालसा नहीं रखता, उसको कोई दुःख नहीं होता, पर जो वस्तुओं के लिए मारा मारा फिरता है उस पर आपत्तियों के ऊपर आपत्तियाँ आती हैं।

९—यहाँ भी मनुष्य को स्थिर सुख प्राप्त हो सकता है यदि वह अपनी इच्छा का ध्वंस कर डाले, क्योंकि इच्छा ही सबसे बड़ी आपत्ति है।

१०—इच्छा कभी तृप्त नहीं होती, किन्तु यदि कोई मनुष्य उसको त्याग दे तो वह उसी क्षण पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

परिच्छेद ३८

भवितव्यता

१—मनुष्य दृढ़प्रतिज्ञ हो जाता है जब भाग्य-लक्ष्मी उस पर प्रसन्न होकर कृपा करना चाहती है, परन्तु मनुष्य में शिथिलता आ जाती है जब भाग्यलक्ष्मी उसे छोड़ने को होती है।

२—दुर्भाग्य शक्ति को मन्द कर देता है, परन्तु जब भाग्यलक्ष्मी कृपा दिखाना चाहती हो तो पहिले बुद्धि में विस्फूर्ति कर देती है।

३—ज्ञान और सब प्रकार की चतुराई से क्या लाभ? जब कि भीतर जो आत्मा है उसका ही प्रभाव सर्वोपरि है।

४—जगत् में दो वस्तुएँ हैं, जो एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलतीं। धन सम्पत्ति एक वस्तु है और साधुता तथा पवित्रता दूसरी वस्तु।

५—जब किसी का भाग्य फिर जाता है तो भलाई भी बुराई में बदल जाती है, पर जब दैव अनुकूल होता है तो बुरे भी अच्छे हो जाते हैं।

६—भवितव्यता जिस बात को नहीं चाहती, उसे तुम अत्यन्त चेष्टा करने पर भी नहीं रख सकते, और जो

वस्तुएँ तुम्हारी हैं, तुम्हारे भाग्य में बदी हैं उन्हें तुम इधर-उधर फेंक भी दो, फिर भी वे तुम्हारे पास से नहीं जावेंगी।

७--उस महान् शासक (दैव) के बिना करोड़पति भी अपनी सम्पत्ति का किंचित् भी उपयोग नहीं कर सकता।

८--गरीब लोग निस्सन्देह अपने मन को त्याग की ओर झुकाना चाहते हैं, किन्तु भवितव्यता उन्हें उन दु:खों के लिए रख छोड़ती है जो उन्हें भोगने हैं।

९-- अपना भला देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है उसे आपत्ति आने पर क्यों दुखी होना चाहिए ?

१०--होनी से बढ़ कर बलवान् और कौन है ? क्योंकि जब ही मनुष्य उसके फन्दे से छूटने का यत्न करता है तब ही वह आगे बढ़कर उसको पछाड़ देती है।

परिच्छेद ३९

राजा

१—जिसके सेना, लोकसंख्या, धन, मंत्रिमंडल, सहायकमित्र, और दुर्ग ये छै यथेष्ट रूप में हैं, वह नृपमण्डल में सिंह है।

२—राजा में साहस, उदारता, बुद्धिमानी और कार्यशक्ति, इन बातों का कभी अभाव नहीं होना चाहिए।

३—जो पुरुष इस पृथ्वी पर शासन करने के लिए उत्पन्न हुए हैं उन्हें चौकसी, जानकारी और निश्चयबुद्धि, ये तीनों खूबियाँ कभी नहीं छोड़तीं।

४—राजा को धर्म करने में कभी न चूकना चाहिए और अधर्म को सदा दूर करना चाहिए। उसे स्पर्धा-पूर्वक अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु वीरता के नियमों के विरुद्ध दुराचार कभी न करना चाहिए।

५—राजा को इस बात का ज्ञान रखना चाहिए कि अपने राज्य के साधनों की विस्फूर्ति और वृद्धि किस प्रकार की जाये और खजाने की पूर्ति किस प्रकार हो, धन की रक्षा किस रीति से की जावे और किस प्रकार समुचित रूप से उसका व्यय किया जावे।

६—यदि समस्त प्रजा की पहुँच राजा तक हो

और राजा कभी कठोर वचन न बोले तो उसका राज्य सबसे ऊपर रहेगा।

७—जो राजा प्रीति के साथ दान दे सकता है और प्रेम के साथ शासन करता है उसका यश जगत् भर में फैल जाएगा।

८—धन्य है वह राजा, जो निष्पक्ष होकर न्याय करता है और अपनी प्रजा की रक्षा करता है। वह मनुष्यों में देवता समझा जाएगा।

९—देखो, जिस राजा में कानों को अप्रिय लगने वाले वचनों को सहन करने का गुण है, पृथ्वी निरन्तर उसकी छत्रछाया में रहेगी।

१०—जो राजा उदार, दयालु तथा न्याय-निष्ठ है और जो अपनी प्रजा की प्रेमपूर्वक सेवा करता है, वह राजाओं के मध्य में ज्योतिस्वरूप है।

परिच्छेद ४०

शिक्षा

१—प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिए और प्राप्त करने के पश्चात् तदनुसार व्यवहार करना चाहिए।

२—मानव जाति को जीती जागती दो आँखें हैं, एक को अंक कहते हैं और दूसरे को अक्षर।

३—शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के शिर में केवल दो गड्ढे होते हैं।

४—विद्वान् जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है।

५—यद्यपि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े जितना कि भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो। मनुष्यों में अधम वे ही लोग हैं जो विद्या सीखने से विमुख होते हैं।

६—स्रोते को तुम जितना ही खोदोगे उतना ही अधिक पानी निकलेगा। ठीक इसी प्रकार तुम जितना ही अधिक सीखोगे उतनी ही तुम्हारी विद्या में वृद्धि होगी।

७—विद्वान् के लिए सभी जगह उसका घर है और सभी जगह उसका स्वदेश है। फिर लोग मरने के दिन तक विद्या प्राप्त करते रहने में असावधानी क्यों करते हैं ?

८—मनुष्य ने एक जन्म में जो विद्या प्राप्त कर ली है वह उसे समस्त आगामी जन्मों में भी उच्च और उन्नत बना देगी।

६—विद्वान् देखता है कि जो विद्या उसे आनन्द देती है वह संसार को भी आनन्दप्रद होती है और इसीलिए वह विद्या को और भी अधिक चाहता है।

१०—विद्या मनुष्य के लिए त्रुटिहीन एक अविनाशी निधि है, उसके सामने दूसरी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है।

परिच्छेद ४१

शिक्षा की उपेक्षा

१—बिना पर्याप्त ज्ञान के सभा मंच पर जाना वैसा ही है जैसा कि विना चौपड़ के पाँसे खेलना।

२—उस अनपढ़ व्यक्ति को देखो, जो प्रभावशाली वक्ता बनने की वांछा कर रहा है। उसकी वांछा वैसी ही है जैसे कि विना उरोजवाली स्त्री का पुरुषों को आकर्षित करने की इच्छा करना।

३—विद्वानों के सामने यदि अपने को मौन बनाये रख सकें तो मूर्ख आदमी भी बुद्धिमान गिना जाएगा।

४—अनपढ़ व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान हो, विज्ञजन उसकी सलाह को कोई महत्व न देंगे।

५—उस व्यक्ति को देखो, जिसने शिक्षा की अवहेलना की है और जो अपने ही मन में बड़ा बुद्धिमान है सभा गोष्ठी में वह अपना भाषण देते ही लज्जित हो जाएगा।

६—अनपढ़ व्यक्ति की दशा उस ऊषर भूमि के समान है जो खेती के लिए अयोग्य है। लोग उसके बारे में केवल यही कह सकते हैं कि वह जीवित है; अधिक कुछ नहीं।

७—विद्वान् का दरिद्र होना निस्सन्देह बहुत

बुरा है, किन्तु मूर्ख के अधिकार में सम्पति का होना तो और भी बुरा है।

८—सूक्ष्म तथा शुभ तत्त्वों में जिसकी बुद्धि का प्रवेश नहीं, उसकी सुन्दरदेह अलंकृत एक मिट्टी की मूर्ति के सिवाय और कुछ नहीं है।

९—उच्च कुल में जन्म लेने वाले मूर्ख का उतना आदर नहीं होता जितना निम्नकुलोद्भव विद्वान् का।

१०—मनुष्य पशुओं से कितना उच्च है? इसी प्रकार अशिक्षितों से शिक्षित उतना ही श्रेष्ठ है।

परिच्छेद ४२

बुद्धिमानों के उपदेश

१—सब से बहुमूल्य, निधियों में कानों को निधि है, निस्सन्देह वह सब प्रकार की सम्पत्तियों से श्रेष्ठ सम्पत्ति है।

२—जब कानों के देने के लिए भोजन न रहेगा तो पेट के लिए भी कुछ भोजन दे दिया जायगा।

३—देखो, जिन लोगों ने बहुत से उपदेशों को सुना है वे पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवतास्वरूप हैं।

४—यदि कोई मनुष्य विद्वान् न हो तो भी उसे उपदेश सुनने दो क्योंकि जब उसके ऊपर संकट पड़ेगा तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी।

५—धर्मात्माओं के उपदेश, एक दृढ़ लाठी के समान हैं क्योंकि जो उनके अनुसार काम करते हैं उन्हें वे गिरने से बचाते हैं।

६—अच्छे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनो, चाहे वे थोड़े से ही क्यों न हों, क्योंकि वे थोड़े शब्द भी तुम्हारी प्रतिष्ठा में समुचित बृद्धि करेंगे।

७—जिस पुरुष ने खूब मनन किया है और बुद्धिमानों के वचनों को सुन सुनकर अनेक उपदेशों को जमा

कर लिया है, वह भूल से भी कभी निरर्थक तथा बाहियात बातें नहीं करता।

८—सुन सकने पर भी वे कान बहिरे हैं जिनको उपदेश सुनने का अभ्यास नहीं है।

९—जिन लोगों ने बुद्धिमानों के चातुरीभरे शब्दों को नहीं सुना है उनके लिए भाषण की नम्रता प्राप्त करना कठिन है।

१०—वे लोग जिह्वा से तो चखते हैं, पर कानों की सुरसता से अनभिज्ञ हैं, वे चाहे जियें या मरें इससे जगत् का क्या आता जाता है?

परिच्छेद ४३

बुद्धि

१—बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है. वह ऐसा दुर्ग है जिसे शत्रु भी घेर कर नहीं जीत सकते।

२—यह बुद्धि ही है जो इन्द्रियों को इधर उधर भटकने से रोकती है, उन्हें बुराई से दूर रखती है और शुभ कर्म की ओर प्रेरित करती है।

३—समझदार बुद्धि का काम है कि हर एक बात में झूठ को सत्य से पृथक कर दे, फिर उस बात को कहने वाला कोई क्यों न हो।

४—बुद्धिमान् मनुष्य जो कुछ कहता है इस तरह से कहता है कि उसे सब कोई समझ सके और दूसरों के मुख से निकले हुए शब्दों के आन्तरिक भाव को शीघ्र समझ लेता है।

५—बुद्धिमान् मनुष्य सबके साथ मिलनसारी से रहता है और उस की प्रकृति सदा एक सी रहती है, उसकी मित्रता न तो पहिले अधिक बढ़ जाती है और न एक दम घट जाती है।

६—यह भी एक बुद्धिमानी का काम है कि

मनुष्य लोकरीति के अनुसार व्यवहार करे।

७—समझदार आदमी पहिले से ही जान जाता है कि क्या होने वाला है पर मूर्ख आगे आने वाली बात को नहीं देख सकता।

८—संकट के स्थान में सहसा दौड़ पड़ना मूर्खता है। बुद्धिमानों का यह भी कहना है कि जिससे डरना चाहिए उससे डरता ही रहे।

९—जो दूरदर्शी आदमी हर एक विपत्ति के लिए पहिले से ही सचेत रहता है वह उस वार से बचा रहेगा जो अति भयंकर है।

१०—जिसके पास बुद्धि है उसके पास सब कुछ है, पर मूर्ख के पास सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है।

परिच्छेद ४४

दोषों को दूर करना

१—जो मनुष्य, दर्प, क्रोध और विषय-लालसाओं से रहित है, उसमें एक प्रकार का गौरव रहता है, जो उसके सौभाग्य को भूषित करता है।

२—कंजूसी, अहङ्कार और अमर्यादित विषय लम्पटता, ये राजा में विशेष दोष होते हैं।

३—जिन लोगों को अपनी कीर्ति प्यारी है, वे अपने दोष को राई के समान छोटा होने पर भी ताड़ वृक्ष के बराबर समझते हैं।

४—अपने को दुर्गणों से बचाने में सदा सचेत रहो, क्योंकि वे ऐसे शत्रु हैं जो तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगे।

५—जो आदमी अचानक आपड़ने वाली विपत्तियों के लिए पहिले से ही सज्जित नहीं रहता वह उसी प्रकार नष्ट हो जाएगा जिस प्रकार आग के सामने फूस का ढेर।

६—राजा यदि पहिले अपने दोषों को सुधार ले, तब दूसरों के दोषों को देखे, तो फिर कौन-सी बुराई उसको छू सकती है?

७—खेद है उस कंजूस पर, जो व्यय करने

की जगह व्यय नहीं करता, उसकी सम्पत्ति कुमार्गों में नष्ट होगी।

८—कंजूस मक्खीचूस होना ऐसा दुर्गुण नहीं है जिसकी गिनती दूसरी बुराइयों के साथ की जा सके उसकी श्रेणि ही बिल्कुल अलग है।

९—किसी समय और किसी बात पर फूल कर आपे से बाहिर मत हो जाओ और ऐसे कामों में हाथ न डालो जिनसे तुम्हें कुछ लाभ न हो।

१०—तुम जिन बातों के रसिक हो उनका पता यदि तुम शत्रुओं को न चलने दोगे तो तुम्हारे शत्रुओं की योजनायें निष्फल सिद्ध होंगी।

परिच्छेद ४५

योग्य पुरुषों की मित्रता

१—जो लोग धर्म करते करते वृद्ध हो गये हैं उनकी तुम भक्ति करो तथा मित्रता प्राप्त करने का यत्न करो।

२—तुम जिन कठिनाइयों में फँसे हुए हो, उनको जो लोग दूर कर सकते हैं और आने वाली बुराइयों से जो लोग तुम्हें बचा सकते हैं उत्साहपूर्वक उनके साथ मित्रता करने की चेष्टा करो।

३—यदि किसी को योग्य पुरुषों की प्रीति और भक्ति मिल जाए तो यह महान् से महान् सौभाग्य की बात है।

४—जो लोग तुमसे अधिक योग्यता वाले हैं, वे यदि तुम्हारे मित्र बन गये हैं तो तुमने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसके सामने अन्य सब शक्तियाँ तुच्छ हैं।

५—मंत्री ही राजा की आँखें हैं, इसलिए उनके चुनने में बहुत ही समझदारी और चतुराई से काम लेना चाहिए।

६—जो लोग सुयोग्य पुरुष के साथ मित्रता का व्यवहार रख सकते हैं, उनके वैरी उनका कुछ बिगाड़ न

सकेंगे।

७—जिस आदमी को ऐसे लोगों की मित्रता का गौरव प्राप्त है कि जो उसे डाँट फटकार सकते हैं उसे हानि पहुँचाने वाला कौन है ?

८—जो राजा ऐसे पुरुषों की सहायता पर निर्भर नहीं रहता कि जो समय पर उसको झिड़क सकें, शत्रुओं के न रहने पर भी उसका नाश होना अवश्यम्भवी है।

९—जिनके पास मूल धन नहीं है, उनको लाभ नहीं मिल सकता, ठीक इसी तरह प्रामाणिकता उन लोगों के भाग्य में नहीं होती कि जो बुद्धिमानों की अविचल सहायता पर निर्भर नहीं रहते।

१०—बहुत से लोगों को शत्रु बना लेना मूर्खता है किन्तु सज्जन पुरुषों की मित्रता को छोड़ना उससे भी कहीं अधिक बुरा है।

परिच्छेद ४६

कुसंग से दूर रहना

१--योग्य पुरुष कुसंग से डरते हैं, पर क्षुद्र प्रकृति के आदमी दुर्जनों से इस रीति से मिलते जुलते हैं कि मानों वे उनके कुटुम्ब के ही हों।

२—पानी का गुण बदल जाता है, वह जैसी धरती पर बहता है वैसा ही गुण उसका हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य की जैसी संगति होती है उसमें वैसे ही गुण आ जाते हैं।

३--आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो उसके मस्तक से है, पर उसकी प्रतिष्ठा तो उन लोगों पर पूर्ण अवलम्बित है जिनकी कि संगति में वह रहता है।

४—मालूम तो ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवास स्थान उस गोष्ठी में है कि जिनकी सङ्गति वह करता है।

५—मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति की पवित्रता पर निर्भर है।

६—पवित्र हृदय वाले पुरुष की सन्तति उत्तम होगी और जिसकी संगति अच्छी है वे हर प्रकार से फूलते

फलते हैं ।

७—अन्तःकरण की शुद्धता ही मनुष्य के लिए बड़ी सम्पत्ति है और सन्त संगति उसे हर प्रकार का गौरव प्रदान करती है ।

८—बुद्धिमान् यद्यपि स्वयमेव सर्वगुणसम्पन्न होते है, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग को शक्ति का स्तम्भ समझते हैं ।

९—धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की संगति उसको धर्माचरण में रत करती है ।

१०—अच्छी संगति से बढ़कर आदमी का सहायक और कोई नहीं है । और कोई वस्तु इतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि दुर्जन की संगति ।

परिच्छेद ४७

विचारपूर्वक काम करना

१--पहिले यह देख लो कि इस काम में लागत कितनी लगेगी, कितना माल खराब जाएगा और लाभ इसमें कितना होगा, पीछे उस काम को हाथ में लो।

२—देखो, जब राजा सुयोग्य पुरुषों से सलाह करने के पश्चात् ही काम को करने का निर्णय करता है उसके लिए ऐसी कोई बात नहीं है जो असम्भव हो।

३—ऐसे भी उद्योग हैं जो नफे का हरा भरा बाग दिखा कर अन्त में मूल धन नष्ट कर देते हैं, बुद्धिमान् लोग उनमें हाथ नहीं लगाते।

४—जो लोग यह नहीं चाहते कि दूसरे आदमी उन पर हँसें वे पहिले अच्छी तरह से विचार किये बिना कोई काम प्रारम्भ नहीं करते।

५—सब बातों की अच्छी प्रकार **मोर्चाबन्दी किये बिना** ही लड़ाई छेड़ देने का अर्थ यह है कि तुम शत्रु को पूरी सावधानी के साथ तैयार की हुई भूमि पर लाकर खड़ा कर देते हो।

६—कुछ काम ऐसे हैं कि जिन्हें नहीं करना चाहिए और यदि तुम करोगे तो नष्ट हो जाओगे तथा कुछ

काम ऐसे हैं कि जिन्हें करना ही चाहिए, यदि तुम उन्हें न करोगे तो भी मिट जाओगे।

७—भली रीति से पूर्ण विचार किये विना किसी काम को करने का निश्चय मत करो। वह मूर्ख है जो काम प्रारम्भ कर देता है और मनमें कहता है कि पीछे सोच लेंगे।

८—जो योग्यमार्ग से काम नहीं करता उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जावेगा, चाहे उसकी सहायता के लिए कितने ही आदमी क्यों न आ जाएँ।

९—जिसका तुम उपकार करना चाहते हो, उसके स्वभाव का यदि तुम ध्यान न रक्खोगे तो तुम भलाई करने में भी भूल कर सकते हो।

१०—तुम जो काम करना चाहते हो वह सर्वथा अपवाद रहित होना चाहिए, क्योंकि जगत् में उसका अपमान होता है जो अपने पद के अयोग्य काम करने पर उतारू हो जाता है।

परिच्छेद ४८

शक्ति का विचार

१—जिस साहस से कर्म को तुम करना चाहते हो उसमें आने वाले संकटों को योग्य रीति से देख भाल लो, उसके पश्चात् अपनी शक्ति, अपने विरोधी की शक्ति तथा अपने और विरोधी के सहायकों की शक्ति को देखो, पीछे उस काम को प्रारम्भ करो।

२—जो अपनी शक्ति को जानता है और जो कुछ उसे सीखना चाहिए वह सीख चुका है तथा जो अपनी शक्ति और ज्ञान की सीमा के बाहिर पाँव नहीं रखता, उसके आक्रमण कभी व्यर्थ नहीं जाएँगे।

३—ऐसे बहुत से राजा हुए जिन्होंने आवेश में आकर अपनी शक्ति को अधिक समझा और काम प्रारम्भ कर बैठे, पर बीच में ही उनका काम तमाम हो गया।

४—जो आदमी शान्तिपूर्वक रहना नहीं जानते, जो अपने बलाबल का ज्ञान नहीं रखते और जो घमण्ड में चूर रहते हैं, उनका शीघ्र ही अन्त हो जाता है।

५—हद से अधिक मात्रा में रखने से मोर-पंख भी गाड़ी की धुरी को तोड़ डालेंगे।

६—जो लोग वृक्ष की चोटी तक पहुँच गये

हैं वे यदि अधिक ऊपर चढ़ने की चेष्टा करेंगे तो अपने प्राण गमायेंगे।

७—तुम्हारे पास कितना धन है इस बात का विचार रक्खो और उसके अनुसार ही तुम दान-दक्षिणा दो, योगक्षेम की बस यही रीति है।

८—भरने वाली नाली यदि तंग है तो कोई पर्वाह नहीं, परन्तु व्यय करने वाली अधिक विस्तीर्ण न हो।

९—जो अपने धन का हिसाब नहीं रखता और न अपनी सामर्थ्य को देखकर काम करता है, वह देखने में वैभवभरा भले ही लगे पर वह इस तरह नष्ट होगा कि उसका नामोल्लेख भी न रहेगा।

१०—जो आदमी अपने धन का लेखाजोखा न रखकर, खुले हाथों से उसे लुटाता है, उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी।

परिच्छेद ४६

अवसर की परख

१—दिन में कौआ उल्लू पर विजय पाता है। जो राजा अपने शत्रु को हराना चाहता है उसके लिए अवसर भी एक बड़ी वस्तु है।

२—सदैव समय को देखकर काम करना यह एक ऐसी डोरी है जो सौभाग्य को दृढ़ता के साथ तुम से आबद्ध कर देगी।

३—यदि उचित अवसर और साधनों को ध्यान में रखकर काम प्रारम्भ किया जाए और समुचित साधनों को उपयोग में लिया जाये तो ऐसी कौन सी बात है जो असम्भव हो।

४—यदि तुम योग्य अवसर और उचित साधनां को चुनोगे तो सारे जगत् को जीत सकते हो।

५—जिनके हृदय में विजयकामना है वे चुपचाप मौका देखते रहते हैं, वे न तो गड़बड़ाते हैं और न उतावले ही होते हैं।

६—चकनाचूर कर देने वाली चोट लगने के पहिले, मेढ़ा एक बार पीछे हट जाता है। कर्मवीर की निष्कर्मण्यता भी ठीक इसी भाँति की होती है।

७—बुद्धिमान् लोग उसी क्षण अपने क्रोध को प्रगट नहीं करते। वे उसको मन ही मन में रखते हैं और अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं।

८—अपने वैरी के सामने झुक जाओ, जब तक उसकी अवनति का दिन नहीं आता। जब वह दिन आयेगा तब सुगमता के साथ उसे सिर के बल नीचे फेंक दे सकोगे।

९—जब तुम्हें असाधारण अवसर मिले तो तुम हिचकिचाओ मत, बल्कि उसी क्षण काम में जुट जाओ, फिर चाहे वह असम्भव ही क्यों न हो।

१०—जब समय तुम्हारे प्रतिकूल हो तो बगुला की तरह निष्कर्मण्यता का बहाना करो, लेकिन जब वह अनुकूल हो तो बगुले के समान ही झपट कर तेजी के साथ हमला करो।

परिच्छेद ५०

स्थान का विचार

१—युद्धक्षेत्र की भली भाँति जाँच किये बिना लड़ाई न छेड़ो और न कोई काम प्रारम्भ करो तथा शत्रु को छोटा मत समझो।

२—दुर्गवेष्टित स्थान पर खड़ा होना शक्तिशाली और प्रतापी पुरुष के लिए भी अत्यन्त लाभदायक है।

३—यदि समुचित रणभूमि को चुन लें और सावधानी के साथ युद्ध करें तो दुर्बल भी अपनी रक्षा करके शक्तिशाली शत्रु को जीत सकते हैं।

४—यदि तुम पहिले ही सुदृढ़ बनाये हुए स्थान पर खड़े हो और वहाँ डटे हो तो तुम्हारे वैरियों की सब युक्तियाँ निष्फल सिद्ध होंगी।

५—पानी के भीतर मगर शक्तिशाली है, किन्तु बाहिर निकलने पर वह वैरियों के हाथ का खिलौना है।

६—नीचट पहियों वाला रथ समुद्र के ऊपर नहीं दौड़ता है और न सागर-गामी जहाज भूमि पर तैरता है।

७—देखो, जो राजा सब कुछ पहिले से ही निर्धारित कर रखता है और समुचित स्थान पर आक्रमण करता है, उसको अपने बल के अतिरिक्त दूसरे सहायकों की

आवश्यकता नहीं है।

८—जिसकी सेना निर्बल है वह राजा यदि रणक्षेत्र के समुचित भाग में जाकर खड़ा हो तो उसके शत्रुओं की सारी चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध होंगी।

९—यदि रक्षा के साधन और अन्य सुभीते न भी हों तो भी किसी को उसके देश में हराना कठिन है।

१०—देखो, उस गजराज को, जिसने पलक मारे बिना, भाले बरदारों की सारी सैन्य का सामना किया, लेकिन जब वही दलदली भूमि में फँस जाता है तो एक गीदड़ भी उसके ऊपर विजय पा लेता है।

परिच्छेद ५१

विश्वस्त पुरुषों की परीक्षा

१—धर्म, अर्थ, काम और प्राणों का भय, ये चार कसौटियाँ हैं जिन पर कस कर मनुष्य को चुनना चाहिए।

२—जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है, दोषों से रहित है और अपयश से डरता है वही तुम्हारे लिए योग्य मनुष्य है।

३—जब तुम परीक्षा करोगे तो देखोगे कि अत्यन्त ज्ञानवान और शुद्ध-मन वाले लोग भी हर प्रकार के अज्ञान से सर्वथा अलिप्त न निकलेंगे।

४—मनुष्य की भलाइयों को देखो और फिर उसकी बुराइयों पर दृष्टि डालो। इनमें जो अधिक हैं, बस समझ लो वैसा ही उसका स्वभाव है।

५—क्या तुम जानना चाहते हो कि अमुक मनुष्य उदारचित्त है या क्षुद्रहृदय? स्मरण रक्खो कि आचार-व्यवहार चरित्र की कसौटी है।

६—सावधान! उन लोगों का विश्वास देख-भाल कर करना कि जिनके आगे पीछे कोई नहीं है क्योंकि उन लोगों का हृदय ममताहीन और लज्जारहित होता है।

७— यदि तुम किसी मूर्ख को अपना विश्वास-

पात्र सलाहकार बनाना चाहते हो, केवल इसलिए कि तुम उसे प्यार करते हो, तो सोच रक्खो कि वह तुम्हें अनन्त मूर्खताओं में ला पटकेगा।

८—जो आदमी परीक्षा लिये बिना ही दूसरे मनुष्य का विश्वास करता है, वह अपनी संतति के लिए अनेक आपत्तियों का बीज बो रहा है।

९—परीक्षा किये बिना किसी का विश्वास न करो और अपने आदमियों की परीक्षा लेने के अनन्तर हर एक को उसके योग्य काम दो।

१०—अनजाने मनुष्य पर विश्वास करना और जाने हुए योग्य पुरुष पर सन्देह करना, ये दोनों ही बातें एक समान अगणित आपत्तियों की जननी हैं।

परिच्छेद ५२

पुरुष परीक्षा और नियुक्ति

१—जो आदमी नेकी को भी देखता है और बदी को भी देखता है, लेकिन पसन्द उसी बात को करता है कि जो नेक है, बस उसी आदमी को अपनी नौकरी में लो।

२—जो मनुष्य तुम्हारे राज्य के साधनों को विस्फूर्त कर सके और उस पर जो आपत्ति पड़े उसे दूर कर सके, ऐसे ही आदमी के हाथ में अपने राज्य का प्रबन्ध सोंपो।

३—उसी आदमी को अपना कर्मचारी चुनो कि जिसमें दया, बुद्धि और द्रुत-निश्चय है अथवा जो लालच से परे है।

४—बहुत से आदमी ऐसे हैं जो सब प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाते हैं, फिर भी ठीक कर्तव्यपालन के समय वे बदल जाते हैं।

५—आदमियों के तद्विषयक ज्ञान और उसकी शान्तिपूर्ण कार्य कारिणी शक्ति का विचार करके ही उनके हाथों में काम सौंपना चाहिए, इसलिए नहीं कि वे तुमसे प्रेम करते हैं।

६—प्रवीण मनुष्य को चुनकर उसे वही काम दो जिसके वह योग्य है, फिर जब काम करने का ठीक समय

आवे तो उससे काम प्रारम्भ करवा दो।

७—पहिले सेवक की शक्ति और उसके योग्य काम का पूर्ण विचार करलो तब उसको जवाबदारी पर वह काम उसके हाथ में दो।

८—जब तुम निश्चय कर चुको कि यह आदमी इस पद के योग्य है तब तुम उसे उस पद को सुशोभित करने योग्य बना दो।

९—जो व्यक्ति अपने भक्त और कार्यनिष्णात कर्मचारी पर रुष्ट होता है, भाग्यलक्ष्मी उससे फिर जाएगी।

१०—राजा को चाहिए कि वह प्रतिदिन हर एक काम की देखभाल करता रहे, क्योंकि जब तक किसी देश के कर्मचारियों में दूषण न होंगे तब तक उस देश पर कोई आपत्ति न आयेगी।

परिच्छेद ५३

बन्धुता

१—केवल बन्धुता में ही विपत्ति के दिनों में भी स्नेह में स्थिरता रहती है।

२—यदि मनुष्य बन्धुगणों से सौभाग्यशाली है और बन्धुगणों का प्रेम उसके लिए घटता नहीं है तो उसका ऐश्वर्य कभी बढ़ने से नहीं रुक सकता।

३—जो मनुष्य अपने सम्बन्धियों के साथ सहृदयतापूर्वक नहीं मिलता है और उनका स्नेह नहीं पाता है वह उस सरोवर के समान है जिसमें ठेंटा न हो और बढ़ती रूपी पानी उससे दूर बह जाता है।

४—अपने नातेदारों को एकत्रित कर उन्हें अपने स्नेह बन्धन में बांधना ही ऐश्वर्य का लाभ और उद्देश्य है।

५—यदि एक आदमी की वाणी मधुर है और उदारहस्त है तो उसके सम्बन्धी उसके पास पंक्ति बांधकर एकत्रित हो जाएँगे।

६—जो मनुष्य बिना रोक के खूब दान करता है और कभी क्रोध नहीं करता, उससे बढ़कर जगत् बन्धु कौन है ?

७—कौआ अपने भाइयों से अपने भोजन को स्वार्थ से छिपाता नहीं है, बल्कि प्यार से उसको बाँटकर खाता है। ऐश्वर्य ऐसे ही प्रकृति के लोगों के साथ रहेगा।

८—यह अच्छा है यदि राजा अपने सभी सम्बन्धियों के साथ एक सा व्यवहार नहीं करता परन्तु प्रत्येक के साथ उसकी योग्यतानुसार भिन्न भिन्न व्यवहार करता है, क्योंकि ऐसे भी बहुत से हैं जो विशेषाधिकार को एकाकी रूप से भोगना पसन्द करते हैं।

९—एक सम्बन्धी का मनमुटाव सरलता से दूर हो जाता है। यदि उदासीनता का कारण हटा दिया जाए तो वह तुम्हारे पास वापिस आ जाएगा।

१०—जब एक सम्बन्धी जिसका सम्बन्ध तुम से टूट गया हो और तुम्हारे पास किसी प्रयोजन के कारण वापिस आता है तो तुम उसे स्वीकार करो, परन्तु सतर्कता के साथ।

परिच्छेद ५४

निश्चिन्तता से बचाव

१—अत्यन्त रोष से भी अचेत अवस्था बहुत बुरी है जो कि अहङ्कार पूर्ण अल्प सन्तोष से उत्पन्न होती है।

२—निश्चिन्तता के भ्रमात्मक विचार कीर्ति का भी नाश करते हैं जैसे दरिद्रता बुद्धि को कुचल देती है।

३—वैभव असावधान लोगों के लिए नहीं है, ऐसा संसार के सभी विज्ञजनों का निश्चय है।

४—कापुरुष के लिए दुर्गों से क्या लाभ है। और असावधान के लिए पर्याप्त सहायक उपायों का क्या उपयोग ?

५—जो पहिले से अपनी रक्षा में प्रमादी रहता है तब वह अपनी निश्चिन्तता पर पीछे से विलाप करता है, जबकि वह विपत्ति से विस्मित हो जाता है।

६—यदि तुम अपनी सावधानी में हर समय और हरेक प्रकार के आदमियों से रक्षा करने में सुस्ती नहीं करते तो इसके बराबर और क्या बात है !

७—उस मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है जो कि अपने काम में सुरक्षित और सजग रहने का विचार रखता है।

८—राजा को चाहिए कि विद्वानों द्वारा प्रशंसित कार्यों में अपने को परिश्रमपूर्वक जुटा दे। यदि वह उनकी उपेक्षा करता है तो वह दुःख उठाने से कभी नहीं बच सकता।

९—जब तुम्हारी आत्मा अहङ्कार और उत्सेक से मोहित होने को हो तब मस्तक में उनका स्मरण रक्खो जो लापरवाही और बेसुधपन से नष्ट हो गये हैं।

१०—निश्चय ही एक मनुष्य के लिए यह सरल है वह जो कुछ इच्छा करे उसको प्राप्त करले, लेकिन वह अपने उद्देश्य को निरन्तर अपने मस्तिष्क के सामने रक्खे।

परिच्छेद ५५

न्याय-शासन

१—पूर्ण विचार करो और किसी की ओर मत झुको, निष्पक्ष होकर नीतिज्ञजनों की सम्मति लो, न्याय करने की यही रीति है।

२—संसार जीवनदान के लिए बादलों की ओर देखता है, ठीक इसी प्रकार न्याय के लिए लोग राजदण्ड की ओर निहारते हैं।

३—राज-दण्ड ही ब्रह्म-विद्या और धर्म का मुख्य संरक्षक है।

४—जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेम-पूर्वक शासन करता है उससे राज्यलक्ष्मी कभी पृथक् न होगी।

५—जो नरेश नियमानुसार राज-दण्ड धारण करता है उसका देश समयानुकूल वर्षा और शस्य-श्री का घर बन जाता है।

६—राजा की विजय का कारण उसका भाला नहीं होता है बल्कि यों कहिये कि वह राज-दण्ड है जो निरन्तर सीधा रहता है और कभी किसी की ओर को नहीं झुकता।

७—राजा अपनी समस्त प्रजा का रक्षक है

और उसकी रक्षा करेगा उसका राज-दण्ड, परन्तु वह उसे कभी किसी की ओर न झुकने दे।

८—जिस राजा की प्रजा सरलता से उसके पास तक नहीं पहुँच सकती और जो ध्यानपूर्वक न्याय-विचार नहीं करता, वह राजा अपने पद से भ्रष्ट हो जाएगा और वैरियों के न होने पर भी नष्ट हो जाएगा।

९—जो राजा आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से अपनी प्रजा की रक्षा करता है, वह यदि अपराध करने पर उन्हें दण्ड दे तो यह उसका दोष नहीं है, किन्तु कर्तव्य है।

१०—दुष्टों को मृत्युदण्ड देना अनाज के खेत से घास को बाहिर निकालने के समान है।

परिच्छेद ५६

अत्याचार

१—जो राजा अपनी प्रजा को सताता है और उस पर अन्याय व अत्याचार करता है वह हत्यारे से भी बढ़कर बुरा है।

२—जो राज-दण्ड धारण करता है, उसकी प्रार्थना ही हाथ में तलवार लिये हुए डाकू के इन शब्दों के समान है "खड़े रहो और जो कुछ है रखदो।"

३—जो राजा प्रतिदिन राज्य-संचालन की देख रेख नहीं रखता और उसमें जो त्रुटियाँ हैं उन्हें दूर नहीं करता उसकी प्रभुता दिन दिन क्षीण होती जाएगी।

४—शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्यायमार्ग से चल विचल हो जाता है, वह अपना राज्य और विपुल धन सब खो देगा।

५—निस्सन्देह ये, अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुए लोगों के आँसू ही हैं, जो राजा की समृद्धि को धीरे धीरे बहा ले जाते हैं।

६—न्याय-शासन द्वारा ही राजा को यश मिलता है और अन्याय-शासन उसकी कीर्ति को कलङ्कित करता है।

७—वर्षाहीन आकाश के तले पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य में प्रजा की होती है।

८—अत्याचारी नरेश के शासन में गरीबों से अधिक दुर्गति धनिकों की होती है।

९—यदि राजा न्याय और धर्म के मुख से पराङ्मुख हो जायगा तो आकाश से ठीक समय पर वर्षा की बौछारें आना बन्द हो जाएँगी।

१०—यदि राजा न्याय-पूर्वक शासन नहीं करेगा तो गाय के थन सूख जाएँगे और द्विज अपनी विद्या को भूल जाएँगे।

परिच्छेद ५७

भयप्रद कृत्यों का त्याग

१—राजा का कर्तव्य है कि वह दोषी को नापतौल कर ही दण्ड देवे, जिससे कि वह दुबारा वैसा कर्म न करे; फिर भी वह दण्ड सीमा के बाहिर न होना चाहिए।

२—जो अपनी शक्ति को स्थायी रखने के इच्छुक हैं उन्हें चाहिए कि वे अपना शासनदण्ड तत्परता से चलावें, परन्तु उसका आघात कठोर न हो।

३—उस राजा को देखो, जो अपने लोहदण्ड द्वारा ही शासन करता है और अपनी प्रजा में भय उत्पन्न करता है। उसका कोई भी मित्र न रहेगा और शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगा।

४—जो राजा अपनी प्रजा में अत्याचार के लिए प्रसिद्ध है वह असमय में ही अपने राज्य से हाथ धो बैठेगा और उसका आयुष्य भी घट जाएगा।

५—जिस राजा का द्वार अपनी प्रजा के लिए सदा बन्द है उसके हाथ में सम्पत्ति ऐसी लगती है मानों किसी राक्षस के द्वारा रखाई हुई कोई धनराशि हो।

६—जो राजा कठोर वचन बोलता है और क्षमा जिसकी प्रकृति में नहीं, वह चाहे वैभव में कितना ही

बढ़ा चढ़ा हो तो भी उसका अन्त शीघ्र होगा।

७—कठोर शब्द और सीमातिक्रान्त-दण्ड वे अस्त्र हैं जो सत्ता की प्रतिष्ठा को छिन्नभिन्न कर देते हैं।

८—उस राजा को देखो, जो अपने मंत्रियों से तो परामर्श नहीं करता और अपनी योजनाओं के असफल होने पर आवेश में आ जाता है, उसका वैभव क्रमशः विलीन हो जायेगा।

९—समय रहते, जो, अपनी रक्षा के साधनों को नहीं देखता उस राजा को क्या कहें ? जब उस पर सहसा आक्रमण होगा तो वह धैर्य खो बैठेगा और जकड़ा जावेगा तथा अन्त में उसका सर्वनाश शीघ्र ही होगा।

१०—उस कठोर शासन के सिवाय, जो मूर्ख और चापलूसों के परामर्श पर निर्भर है और कोई बड़ा भारी भार नहीं है जिसके कारण पृथ्वी कराहती है।

परिच्छेद ५८

विचारशीलता

१—उस परम आनन्ददायक सुन्दरता को देखो, जिसे लोग शील कहते हैं। यदि यह जगत् सुचारु रूप से चल रहा है तो इसमें कारण एक शीलता ही है।

२—जीवन की मनोहरताओं का शील में अस्तित्व रहता है, जो इसको नहीं रखते वे पृथ्वी के लिए भार हैं।

३—उस गीत का क्या महत्त्व है जो गाया नहीं जाता और उस आँख का क्या महत्व है जो प्रेम नहीं दर्शाती ?

४—उन आँखों से क्या लाभ जो चेहरे में केवल दीखतीं हैं, यदि वे दूसरों के लिए मात्रा के अनुसार आदर नहीं दर्शातीं।

५—शील आँख का भूषण है। जिस आँख में यह नहीं होता वह केवल एक घाव ही समझा जायेगा।

६—उन लोगों को देखो जिनके आँखें हैं पर जो दूसरों के प्रति बिल्कुल शील (लिहाज) नहीं रखते, निश्चय ही उन मूर्तियों से अच्छे नहीं हैं जो काठ व मिट्टी की बनी हुई हैं।

७—सचमुच वे ही अन्धे हैं जो दूसरों के प्रति

आदर नहीं रखते और केवल वे ही वास्तव में देखते हैं जो दूसरों की गलतियों के प्रति दयालु रहते हैं।

८--उस आदमी को देखो जो दूसरों के प्रति विना अपने किसी कर्तव्य को कम किये लिहाजदार रह सकता है, वह पृथ्वी को उत्तराधिकार में पा लेगा।

६--यह उच्चता है कि जिसने तुम को दुःख दिया हो उसे तुम छोड़ दो और उसके साथ क्षमा का व्यवहार करो।

१०--जो सत्य ही सुशील नेत्र वाला बनना चाहते हैं उनको वह विष भी पीना होगा जो उनकी आँखों के सामने ही मिलाया गया हो।

परिच्छेद ५६

गुप्तचर

१—राजा को यह ध्यान में रखना चाहिए कि राजनीति और गुप्तचर ये दो आँख हैं जिनसे वह देखता है।

२—राजा का काम है कि कभी-कभी प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक बात की प्रतिदिन खबर रक्खे।

३—जो राजा गुप्तचरों और दूतों के द्वारा अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं की खबर नहीं रखता उसके लिए दिग्विजय नहीं है।

४—राजा को चाहिए कि अपने राज्य के कर्मचारियों, अपने बन्धु-बान्धवों और शत्रुओं की गतिमति को देखने के लिए गुप्तचर नियत कर रक्खे।

५—जो आदमी अपनी मुखमुद्रा का ऐसा भाव बना सके कि जिससे किसी को सन्देह न हो और किसी भी आदमी के सामने गड़बड़ाये नहीं तथा जो अपने गुप्त भेदों को किसी तरह प्रगट न होने दे, भेदिया का काम करने के लिए वही ठीक आदमी है।

६—गुप्तचरों और दूतों को चाहिए कि वे साधु-सन्तों का वेश धारण करें और खोजकर सच्चा भेद निकाल लें, किन्तु चाहे कुछ भी हो जाए वे अपना भेद न

बतावें।

७—जो मनुष्य दूसरों के पेट से भेद की बातें निकाल सकता है और जिसकी गवेषणा सदा शुद्ध तथा निस्सन्दिग्ध होती है वही भेद लगाने का काम करने लायक है।

८—एक गुप्तचर के द्वारा जो सूचना मिलती है, उसको दूसरे चर की सूचना से मिलाकर जांचना चाहिए।

९—इस बात का ध्यान रक्खो कि काई गुप्तचर उसी काम में लगे हुए दूसरे गुप्तचर को न जानने पावे और जब तीन चरों की सूचनाएँ एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मानना चाहिए।

१०—अपने गुप्तचरों को उजागर रूप में पुरस्कार मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने सारे राज्य का गुप्त रहस्य खोल दोगे।

परिच्छेद ६०

उत्साह

१—वे ही सम्पत्तिशाली कहे जा सकते हैं जिनमें उत्साह है और जिनमें यह उत्साह नहीं है वे क्या वास्तव में अपने धन के स्वामी हैं ?

२—पुरुषार्थ ही यथार्थ में मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है, क्योंकि दूसरी सम्पत्ति तो स्थायी नहीं रहती, वह तो मनुष्य के हाथ से एक दिन अवश्य ही चली जावेगी।

३—वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके हाथ में अटूट उत्साह रूपी साधन है, उनको यह कहकर कभी निराश न होना पड़ेगा कि हाय ! हाय ! हमारा तो सर्वनाश हो गया।

४—धन्य है वह पुरुष जो परिश्रम से कभी पीछे नहीं हटता, भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई आती है।

५—झाड़ तथा पौधों को सींचने के लिए जो पानी दिया जाता है उससे जिस प्रकार अच्छी बहार का पता लगता है, उसी प्रकार आदमी का उत्साह उसके भाग्यशीलता का परिचायक है।

६—अपने उद्देश्यों को उदात्त बनाये रहो, कारण यदि वे विफल रहे तो भी तुम्हारे यश को कलंक न

लगेगा।

७—साहसी पुरुष पराजित होने पर भी निरुत्साहित नहीं होते। हाथी तीखे बाणों के गहरे आघात होने पर अपने पैरों को और भी दृढ़ता से जमा देता है।

८—उन पुरुषों को देखो जिनका उत्साह शनैः शनैः क्षीण हो रहा है। अपार उदारता के वैभव का आनन्द उनके भाग्य में नहीं है।

९—जब हाथी सिंह को अपने ऊपर आक्रमण के लिए तैयार देखता है तब उसका हृदय बैठ जाता है। बताइये इतना बड़ा शरीर और उसके सुतीक्ष्ण लम्बे दाँत किस काम के ?

१०—अपार उत्साह ही शक्ति है। जिसमें उत्साह नहीं वे तो निरे पशु हैं, उनका मानवशरीर तो एक मात्र शारीरिक विशेषता को ही प्रगट करने वाला है।

परिच्छेद ६१

आलस्य–त्याग

१– आलस्यरूपी अपवित्र वायु के झोंके से राजवंश की अखण्ड ज्योति बुझ जाएगी।

२–लोगों को आलसी कहकर पुकारने दो! पर जो अपने घराने को दृढ़ पाये पर उन्नत करना चाहते हैं उन्हें आलस्य के खरे स्वरूप को समझकर उसका त्याग कर देना चाहिए।

३–जो लोग इस हत्यारे आलस्य को हृदय से लगाते हैं उन मूर्खों का वंश उनके जीवनकाल में ही नष्ट हो जायेगा।

४–जो लोग आलस्य में डूबकर उच्च तथा महान् कार्यों की ओर अपना हाथ नहीं बढ़ाते उनका घर क्षय-काल में पड़कर संकटग्रस्त हो जायेगा।

५–विनाश होना जिनके भाग्य में बदा है उनकी टालमटूल, विस्मृति, सुस्ती और निद्रा, ये चार उत्सव-नौकायें हैं।

६–राजकृपा भी हो तो भी आलसी की उन्नति सम्भव नहीं है।

७–जो लोग आलसी हैं और महत्त्वपूर्ण कार्यों

में अपना हाथ नहीं बटाते उनको संसार में निन्दा और धिक्कार सुनने ही पड़ेंगे।

८—जिस कुटुम्ब में आलस्य घर कर लेता है वह कुटुम्ब शीघ्र हो शत्रुओं के हाथ में पड़ जायेगा।

९—कभी किसी मनुष्य पर कुछ संकट आते हों और यदि वह उसी समय आलस्य का त्याग कर देवे तो वे संकट भी वहीं ठिटक जावेंगे।

१०—जिस राजा ने आलस्य को सर्वथा त्याग दिया है वह एक दिन त्रिविक्रम से नपी हुई इस विशाल पृथ्वी को अपने अधिकार में ले आयेगा।

परिच्छेद ६२

पुरुषार्थ

१—यह काम अशक्य है, ऐसा कहकर किसी भी काम से पीछे न हटो, कारण पुरुषार्थ अर्थात् उद्योग प्रत्येक काम में सिद्धि देने की शक्ति रखता है।

२—किसी काम को अधूरा छोड़ने से सावधान रहो, कारण अधूरा काम करने वालों की जगत् में कोई चाह नहीं करता।

३—किसी के भी कष्ट के समय उससे दूर न रहने में ही मनुष्य का बड़प्पन है और उसको प्राप्त करने के लिए सभी मनुष्यों को हार्दिक सेवा रूप निधि (धरोहर) रखनी पड़ती है।

४—पुरुषार्थहीन की उदारता नपुंसक की तलवार के समान है, कारण वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती।

५—जो सुख की चाह न कर कार्य को चाहता है वह मित्रों का ऐसा आधारस्तम्भ है जो उनके दुःख के आँसुओं को पोंछेगा।

६—उद्योगशीलता ही वैभव की माता है, पर आलस्य दारिद्र्य और दुर्बलता का जनक है।

७—कंगाली का घर निरुद्योगिता है, लेकिन जो आलस्य के फेर में नहीं पड़ता उसके परिश्रम में लक्ष्मी का नित्य निवास है।

८—यदि मनुष्य कदाचित् वैभवहीन हो जावे तो कोई लज्जा की बात नहीं है, परन्तु जानबूझकर मनुष्य श्रम से मुख मोड़े यह बड़ी ही लज्जा की बात है।

९—भाग्य उलटा भी हो तो भी उद्योग श्रम का फल दिये बिना नहीं रहता।

१०—जो भाग्यचक्र के भरोसे न रहकर लगातार पुरुषार्थ किये जाता है वह विपरीत भाग्य के रहने पर भी उस पर विजय प्राप्त करता है।

परिच्छेद ६३

संकट में धैर्य

१—जब तुम पर कोई आपदा आ पड़े तो तुम हँसते हुए उसका सामना करो क्योंकि मनुष्य को आपत्ति का सामना करने के लिए सहायता देने में मुस्कान से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है।

२—अनिश्चित मन का पुरुष भी मन को एकाग्र करके जब सामना करने को खड़ा होता है तो आपत्तियों का लहराता हुआ सागर भी दबकर बैठ जाता है।

३—आपत्तियों को जो आपत्ति नहीं समझते, वे आपत्तियों को ही आपत्ति में डालकर वापिस भेज देते हैं।

४—भैंसे की तरह हर एक संकट का सामना करने के लिए जो जी तोड़कर श्रम करने को तैयार है, उसके सामने विघ्न-बाधा आएँगी पर निराश होकर अपना सा मुँह लेकर वापिस चली जाएँगी।

५—आपत्ति की एक समस्त सेना को अपने विरुद्ध सुसज्जित खड़ी देखकर भी जिसका मन बैठ नहीं जाता, बाधाओं को उसके पास आने में स्वयं बाधा होती है।

६—सौभाग्य के समय जो हर्ष नहीं मनाते क्या वे कभी इस प्रकार का दुखोना कहते फिरेंगे कि हाय!

हम नष्ट हो गये।

७—बुद्धिमान् लोग जानते हैं कि यह देह तो विपत्तियों का घर है और इसीलिए जब उन पर कोई संकट आ जाता है तो वे उसकी कुछ पर्वाह नहीं करते।

८—जो आदमी भोगोपभोग की लालसा में लिप्त नहीं और जो जानता है कि आपत्तियाँ भी सृष्टि-नियम के अन्तर्गत हैं, वह बाधा पड़ने पर कभी दुःखित नहीं होता।

९—सफलता के समय जो हर्ष में मग्न नहीं होता, असफलता के समय उसे दुःख से घबराना नहीं पड़ता।

१०—जो आदमी परिश्रम के दुःख, दबाव और आवेग को सच्चा सुख समझता है उसके वैरी भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

परिच्छेद ६४

मंत्री

१—देखो, जो मनुष्य महत्त्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है तथा उनको आरम्भ करने के समुचित समय को पहिचानता है सलाह देने के लिए वही योग्य पुरुष है।

२—स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा ये मन्त्री के पाँच गुण है।

३—जिसमें शत्रुओं के अन्दर फूट डालने की शक्ति है जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को बनाये रख सकता है और जो वैरी बन गये हैं उनसे सन्धि करने की सामर्थ्य जिसमें है बस वही योग्य मन्त्री है।

४—उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्यरूप में परिणत करने के साधनों को चुनने की योग्यता तथा सम्मति देते समय निश्चयात्मक स्पष्टता ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

५—जो नियमों को जानता है तथा विपुल ज्ञान से भरा है जो समझ बूझकर बात करता है और जिसे प्रत्येक प्रसंग की परख है बस वही तुम्हारे योग्य मन्त्री है।

६—जो पुस्तकों के ज्ञान द्वारा अपनो स्वाभाविक बुद्धि की अभिवृद्धि कर लेते हैं, उनके लिए कौनसी बात इतनी कठिन है जो उनकी समझ में न आ सके।

७—पुस्तकों के ज्ञान में तुम सुदक्ष हो फिर भी तुम्हें चाहिए कि तुम अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

८—सम्भव है कि राजा मूर्ख हो और पग पग पर उसके काम में अड़चनें डाले फिर भी मन्त्री का कर्तव्य है कि वह सदा वही राह उसे दिखावे कि जो नियम संगत और समुचित हो।

९—देखो, जो मन्त्री, मंत्रणा-गृह में बैठकर, अपने राजा का सर्वनाश करने की युक्ति सोचता है, वह सप्त-कोटि वैरियों से भी अधिक भयंकर है।

१०—चंचलचित्त का पुरुष सोचकर ठीक रीति निकाल भी ले पर उसे व्यावहारिक रूप देते हुए वह डगमगायेगा और अपने अभिप्राय को कभी पूरा न कर सकेगा।

परिच्छेद ६५

वाक् पटुता

१—वाक्-शक्ति निःसन्देह एक बड़ा वरदान है, क्योंकि वह अन्य वरदानों का अंश नहीं किन्तु एक स्वतन्त्र वरदान है।

२—जीवन और मृत्यु जिह्वा के वश में हैं, इसलिए ध्यान रक्खो कि तुम्हारे मुंह से कोई अनुचित बात न निकले।

३—जो वक्तृता मित्रों को और भी घनिष्टता के सूत्र में आबद्ध करती है और विरोधियों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है, बस वही यथार्थ वक्तृता है।

४—हर बात को ठीक तरह से तौल कर देखो और फिर जो उचित हो वही बोलो, धर्मवृद्धि तथा लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे पक्ष में और कोई नहीं है।

५—तुम ऐसी वक्तृता दो कि जिसे दूसरी कोई वक्तृता चुप न कर सके।

६—ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के हृदय को खींचले और दूसरों की वक्तृता के अर्थ को शीघ्र ही समझ जाना यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्तव्य है।

७—जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिए संभव नहीं।

८—जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है सारी पृथ्वी उसके संकेत पर नाचेगी।

९—जो लोग अपने मन की बात थोड़े से चुने हुए शब्दों में कहना नहीं जानते वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की आदत होती है।

१०—जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरों को नहीं बता सकते वे उस फूल के समान हैं जो खिलता है परन्तु सुगन्धि नहीं देता।

परिच्छेद ६६

शुभाचरण

१—मित्रता द्वारा मनुष्य को सफलता मिलती है किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कर देती है।

२—उन कामों से सदा विमुख रहो कि जिनसे न सुकीर्ति मिलती है और न लाभ होता है।

३—जो लोग संसार में उन्नति करना चाहते हैं उन्हें ऐसे कार्यों से सदा दूर रहना चाहिए जिनसे कीर्ति में कलंक लगने की संभावना हो।

४—बुरा काल आने के पश्चात् भी जो लोग सत्य को नहीं छोड़ते उन मनुष्यों को देखो, वे छुद्र और अकीर्तिकारक कर्मों से सदा दूर रहते हैं।

५—यह मैंने क्या किया! इस प्रकार पछतावा देने वाले कर्म मनुष्य को कभी नहीं करने चाहिए और यदि किये हों तो भविष्य मे वैसे कर्म करना उसे श्रेयस्कर नहीं।

६—भले आदमी जिन बातों को बुरा बतलाते हैं, मनुष्य को चाहिए कि जननी की रक्षा के लिए भी उन्हें न करे।

७—निन्द्यकर्मों द्वारा एकत्र की हुई सम्पत्ति

की अपेक्षा तो सदाचारी पुरुष की निर्धनता कहीं अच्छी है।

८—धर्मशास्त्र में जो काम हेय बताये गये हैं उनको भी जो नहीं छोड़ते ऐसे मनुष्यों को देखो, वे चाहे सफल मनोरथ भी हो गये हों तो भी उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी।

९—लोगों को रुलाकर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह क्रन्दन ध्वनि के साथ ही विदा हो जाती है, पर जो धर्म द्वारा संचित की जाती है वह बीच में क्षीण हो जाने पर भी अन्त में खूब फूलती फलती है।

१०—छल छिद्र द्वारा संचित किया हुआ धन ऐसा ही है जैसे कि मिट्टी के कच्चे घड़े में पानी भरकर रखना।

परिच्छेद ६७

स्वभाव-निर्णय

१—यश का महत्व और कुछ नहीं बल्कि उस इच्छाशक्ति की महत्ता है जो उसके लिए प्रयास करती है और अन्य बातें उस अंश तक नहीं पहुँचती।

२—ऐसे सभी कामों से बचाव रखना जो निश्चय असफल होंगे और अपने उद्देश्य से बाधाओं के कारण विचलित न होना, ये दोनों सिद्धान्त विद्वानों के पथप्रदर्शक हैं।

३—कर्मठ पुरुष अपने उद्देश्य को तभी मालूम होने देता है जब अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि असमय में ही भेद खुल जाने से ऐसी बाधायें आ सकती हैं जिनका कि पीछे उल्लंघन कठिन हो जायगा।

४—किसी मनुष्य के लिए एक वस्तु के विषय में कहना सरल है परन्तु उसको अपने हाथ से करना वास्तव में कठिन है।

५—जिस मनुष्य ने महान् कार्यों को करने का यश कमा लिया है उसको सेवाओं के लिए राजा भी विनती करेगा और वह सबके द्वारा प्रशंसित होगा।

६—मनुष्य जो जो इच्छायें करता है उन्हें अपने इष्टरूप में हो पा सकता है, यदि वह शुद्ध अन्त:करण से

उनका सच्चा संकल्प करे।

७—किसी आदमी की आकृति से ही घृणा नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसे भी आदमी हैं जो भरी गाड़ी में धुरा की कील के समान हैं।

८—जब आपने अपनी सारी बुद्धिमत्ता से एक काम करने की ठान ली है तब डगमगाना नहीं चाहिए बल्कि लक्ष्य को शक्ति से प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

९—ऐसे कार्यों के करने में जुट जाओ जो प्रसन्नता बढ़ाते हैं चाहे तुम्हें ऐसा करने में अनेक कठोर दुःखों की पीड़ा उठानी पड़े, अपने हृदय को कड़ा करो और अन्त तक दृढ़ रहो।

१०—जिन लोगों में चरित्र के निर्णय करने की शक्ति नहीं होती उन्होंने अन्य दिशाओं में चाहे कितनी ही महत्ता प्राप्त कर ली हो संसार उसकी कुछ परवाह नहीं करेगा।

परिच्छेद ६८

कार्य-संचालन

१—किसी निश्चय पर पहुँचना यही विचार का उद्देश्य है और जब किसी बात का निश्चय हो गया तब उसको कार्यरूप में परिणत करने में विलम्ब करना भूल है।

२—जिन कामों को सावकाश होकर कर सकते हो उनको तुम पूर्णरीति से सोच विचार कर करो, किन्तु तत्कालोचित कार्यों के लिए तो क्षण भर भी देर न करो।

३—यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो सीधे अपने लक्ष्य की ओर चलो, किन्तु परिस्थिति अनुकूल न हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो जिसमें सबसे कम बाधाएँ आने की सम्भावना हो।

४—अधूरा काम और अपराजित शत्रु ये दोनों बिना बुझी आग की चिनगारियों के समान हैं, वे समय पाकर बढ़ जाएंगे और उस असावधान आदमी को आ दबोचेंगे।

५—प्रत्येक काम को करते समय पाँच बातों का ध्यान रक्खो अर्थात् उपस्थित साधन, औजार, कार्य का स्वरूप, समुचित समय और कार्य करने का उपयुक्त स्थान।

६—काम में कितना परिश्रम पड़ेगा, मार्ग में कितनी बाधाएँ आयेंगी और फिर कितने लाभ की आशा है,

इन बातों को पहिले सोच लो, पीछे किसी काम को हाथ में लो।

७—किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने का यही मार्ग है कि जो मनुष्य उस काम में दक्ष है उससे उस काम का रहस्य मालूम कर लेना चाहिए।

८—लोग एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी को फँसाते हैं, ठीक इसी प्रकार एक काम को दूसरे काम का साधन बना लेना चाहिए।

९—मित्रों को पारितोषिक देने से भी अधिक शीघ्रता के साथ वैरियों को शान्त कर लेना चाहिए।

१०—दुर्बलों को सदा संकट की स्थिति में नहीं रहना चाहिए, बल्कि जब अवसर मिले तब उन्हें बलवान के साथ संधि कर लेनी चाहिए।

परिच्छेद ६९

राज-दूत

१—दयालु हृदय, उच्च कुल और राजाओं को प्रसन्न करने की रीतियाँ ये सब राज-दूतों की विशेषताएं हैं।

२—स्वामिभक्ति, सुतीक्ष्णबुद्धि और वाक्-पटुता ये तीनों बातें राज-दूत के लिए अनिवार्य हैं।

३—जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दों को बोलने का भार अपने शिर लेता है उसे विद्वानों में परमविद्वान् होना चाहिए।

४—व्यावहारिक ज्ञान, विद्वत्ता और प्रभावोत्पादक मुखमुद्रा ये बातें जिसमें हों उसी को राज-दूत के नाम पर बाहिर जाना चाहिए।

५—संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और सावधानी के साथ अप्रिय-भाषा का त्याग, ये ही साधन हैं जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचाता है।

६—विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता शान्त-वृत्ति और समय सूचकता प्रगट करने वाली संयुक्त प्रत्युत्पन्न-मति, ये सब राज-दूत के आवश्यक गुण हैं।

७—वही सबसे योग्य राज-दूत है जिसको समुचित क्षेत्र और समुचित समय की परख है, जो अपने

कर्तव्य को जानता है तथा जो बोलने से पहिले अपने शब्दों को जाँच लेता है।

८—जो मनुष्य दूत कर्म के लिए भेजा जाये वह दृढ़-प्रतिज्ञ, पवित्र-हृदय और चित्ताकर्षक स्वभाव वाला होना चाहिए।

६—जो दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष अपने मुख से हीन और अयोग्य वचन कभी नहीं निकलने देता विदेशी दरबारों में राजाओं के सन्देश सुनाने के लिए वही योग्य पुरुष है।

१०—मृत्यु का सामना होने पर भी सच्चा राज-दूत अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता बल्कि अपने स्वामी के कार्य की सिद्धि के लिए पूरा यत्न करता है।

परिच्छेद ७०

राजाओं के समक्ष व्यवहार

१—जो कोई राजाओं के साथ रहना चाहता है, उसको चाहिए कि वह उस आदमी के समान व्यवहार करे, जो आग के सामने बैठकर तापता है, उसको न तो अति समीप जाना चाहिए न अति दूर।

२—राजा जिन वस्तुओं को चाहता है उनकी लालसा न रखो, यही उसकी स्थायी कृपा प्राप्त करने और उसके द्वारा समृद्धिशाली बनने का मूल मंत्र है।

३—यदि तुम राजा की अप्रसन्नता में पड़ना नहीं चाहते तो तुमको चाहिए कि हर प्रकार के गम्भीर दोषों से सदा शुद्ध रहो, क्योंकि यदि एक बार भी सन्देह पैदा हो गया तो फिर उसे दूर करना असम्भव हो जाता है।

४—राजा के सामने लोगों से काना-फूसी न करो और न किसी दूसरे के साथ हँसो या मुस्कराओ।

५—छिपकर राजा की कोई बात सुनने का प्रयत्न न करो और जो बात तुम्हें नहीं बताई गई है उसका पता लगाने की चेष्टा भी न करो। जब तुम्हें बताया जाये तभी उस भेद को जानो।

६—राजा की मनोवृत्ति इस समय कैसी है,

इस बात को समझ लो और क्या प्रसंग है इसको भी देखलो, तब ऐसे शब्द बोलो जिनसे वह प्रसन्न हो।

७—राजा के सामने उन्हीं बातों की चर्चा करो जिनसे वह प्रसन्न हो, पर जिन बातों से कुछ लाभ नहीं है उन निरर्थक बातों की चर्चा राजा के पूछने पर भी न करो।

८—राजा नवयुवक है और तुम्हारा सम्बन्धी अथवा नातेदार है इसलिए तुम उसको तुच्छ मत समझो, बल्कि उसके अन्दर जो ज्योति विराजमान है उसके सामने भय मानकर रहो।

९—जिनकी दृष्टि निर्मल और निर्द्वन्द है वे यह समझकर कि हम राजा के कृपापात्र हैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे राजा असन्तुष्ट हो।

१०—जो मनुष्य राजा की घनिष्टता और मित्रता पर भरोसा रखकर अयोग्य काम कर बैठते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

परिच्छेद ७१

मुखाकृति से मनोभाव समझना

१—जो मनुष्य दूसरे के मुख से निकलने के पहिले ही उसके मनकी बात को जान लेता है वह जगत् के अलंकारस्वरूप है।

२—हार्दिक भाव को विश्वस्त रूप से जान लेने वाले मनुष्य को देवता समझो।

३—जो लोग किसी आदमी की आकृति देख कर ही उसके अभिप्राय को ताड़ जाते हैं ऐसे लोगों को चाहे जैसे बने वैसे अपना सलाहकार बनाओ।

४—जो मनुष्य बिना कहे ही मनकी बात समझ लेते हैं उनकी आकृति तथा मुखमुद्रा वैसी ही हो सकती है जैसी कि न समझ सकने वालों की होती है, फिर भी उन लोगों का वर्ग दूसरा ही है।

५—जो आँखें एक ही दृष्टि में दूसरे के मनोगत् भावों को नहीं भाँप सकतीं उनकी इन्द्रियों में विशेषता ही क्या ?

६—जिस प्रकार स्फटिक मणि अपना रंग बदल कर पास वाले पदार्थ का रंग धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार मनोगत भाव से मनुष्य की मुखमुद्रा भी बदल

जाती है और हृदय में जो बात होती है उसी को प्रगट करने लगती है।

७—मुखचर्या से बढ़कर भावपूर्ण वस्तु और कौन सी है ! क्योंकि अन्तरंग क्रुद्ध है या अनुरागी, इस बात को सबसे पहिले वह ही प्रगट करती है।

८—यदि तुम्हें ऐसा आदमी मिल जाय जो बिना कहे ही चित्त की बात परख सकता हो, तो बस इतना ही पर्याप्त है कि तुम उसकी ओर एक दृष्टि भर देख लो, तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी।

९—यदि ऐसे लोग हों जो उसके हाव भाव और रंग ढंग को समझ सकें तो अकेली आँख ही यह बात बतला सकती है कि हृदय में घृणा है अथवा प्रेम !

१०—जो लोग जगत् में धूर्त या भद्र प्रसिद्ध हैं उनका माप और कुछ नहीं केवल उनकी आँखें ही हैं।

परिच्छेद ७२

श्रोताओं का निर्णय

१--जिसने वक्तृता का उत्तम अभ्यास किया है और सुरुचि प्राप्त कर ली है उसे प्रथम श्रोताओं की पूरी परख करनी चाहिए पीछे उनके अनुरूप भाषण देना चाहिए।

२--ए! शब्दों का मूल जानने वाले पवित्र पुरुषो! पहिले अपने श्रोताओं की मानसिक स्थिति को समझ लो और फिर उपस्थित जनसमूह की अवस्था के अनुसार अपनी वक्तृता देना आरम्भ करो।

३—जो व्यक्ति श्रोतृवर्ग के स्वभाव का अध्ययन किये बिना भाषण देते हैं वे भाषणकला जानते ही नहीं और न वे किसी अन्य कार्य के लिए उपयोगी हैं।

४—बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों की सभा में ही ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा करो, किन्तु मूर्खों को उनकी मूर्खता का ध्यान रखकर ही उत्तर दो।

५—धन्य है वह आत्म-संयम जो मनुष्य को वृद्ध जनों की सभा में आगे बढ़कर नेतृत्व ग्रहण करने से मना करता है। यह एक ऐसा गुण है जो अन्य गुणों से भी अधिक समुज्ज्वल है।

६—बुद्धिमान् लोगों के सामने असमर्थ और

असफल सिद्ध होना धर्ममार्ग से पतित हो जाने के समान है।

७—विद्वानों की विद्वत्ता अपने पूर्ण तेज के साथ सुसम्पन्न गुणियों की सभा में ही चमकती है।

८—बुद्धिमान् लोगों के सामने उपदेशपूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौधों को पानी देने के समान है।

९- ए! वक्तृता से विद्वानों को प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगो! देखो, कभी भूलकर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना।

१०—अपने से मतभेद रखने वाले व्यक्तियों के समक्ष भाषण करना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार अमृत को मलिन स्थान पर डाल देना।

परिच्छेद ७३

सभा में प्रौढ़ता

१—जिन व्यक्तियों ने भाषणकला का अध्ययन किया है और सुरुचि प्राप्त की है वे जानते हैं कि भाषण किस प्रकार देना चाहिए और वे बुद्धिमान् श्रोताओं के समक्ष भाषण देने में किसी प्रकार की चूक नहीं करते।

२—जो व्यक्ति ज्ञानी मनुष्यों के समुदाय में अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रह सकता है वही विद्वानों में विद्वान माना जाता है।

३—रणक्षेत्र में खड़े होकर वीरता के साथ मृत्यु का सामना करने वाले लोग तो बहुत हैं परन्तु ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जो बिना काँपे श्रोताओं के समक्ष सभामञ्च पर खड़े हो सकें।

४—तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रक्खो और और जो बात तुम्हे मालूम नहीं है वह उन लोगों से सीख लो जो उसमें दक्ष हों।

५—तर्कशास्त्र को तुम भली प्रकार सीख लो जिससे कि मानव समुदाय के सामने बिना भयातुर हुए बोल सको।

६—उन व्यक्तियों के लिए कृपाण की क्या

उपयोगिता है जिनमें शक्ति ही नहीं है, इसी प्रकार उन मनुष्यों के लिए शास्त्र का क्या उपयोग जो कि विद्वानों के समक्ष आने में ही कांपते हैं ?

७—श्रोताओं के सामने आने में भयभीत होने वाले व्यक्ति का ज्ञान उसी प्रकार है जैसे युद्धक्षेत्र में नपुंसक के हाथ कृपाण ।

८—जो लोग विद्वानों की सभा में अपने सिद्धान्त श्रोताओं के हृदय में नहीं बिठा सकते उनका अध्ययन चाहे कितना ही विस्तृत हो फिर भी वह निरुपयोगी ही है ।

९—जो मनुष्य ज्ञानी हैं लेकिन विज्ञजनों के सामने आने में डरते हैं वे अज्ञानियों से भी गये बीते हैं ।

१०—जो व्यक्ति मानव समुदाय के सामने आने में डरते हैं और अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में असमर्थ हैं वे जीवित होकर मृतकों से भी गये बीते हैं ।

परिच्छेद ७४

देश

१— यह महान् देश है जो फसल का पैदावार में कभी नहीं चूकता और जो ऋषि-मुनियों तथा धार्मिक धनिकों का निवासस्थान हो।

२—वही श्रेष्ठ देश है जो धन की विपुलता से जनता का प्रीतिभाजन हो और घृणित रोगों से मुक्त होकर समृद्धिशाली हो।

३—उस महान् राष्ट्र की ओर देखो, उस पर कितने ही बोझ के ऊपर बोझ पड़ें वह उन्हें धैर्य के साथ सहन करेगा और साथ ही सारे कर अर्पण करेगा।

४—वही देश उच्च है जो अकाल और महामारी जैसे रोगों से उन्मुक्त है तथा जो शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित है।

५—वही उत्तम देश है जो परस्पर युद्ध करने वाले दलों में विभक्त नहीं है, जो हत्यारे क्रान्तिकारियों से रहित है और जिसके भीतर राष्ट्र का सर्वनाश करने वाला कोई देशद्रोही नहीं है।

६—जो देश शत्रुओं के हाथ से कभी विध्वस्त नहीं हुआ और यदि कदाचित् हो भी गया तो भी जिसकी

पैदावार में थोड़ीसी भी कमी नहीं आती, वह देश जगत् के सब देशों में रत्न माना जाएगा।

७--पृथ्वी के ऊपर और भीतर बहने वाला जल, वर्षाजल, उपयुक्त-स्थान को प्राप्त पर्वत और सुदृढ़ दुर्ग ये प्रत्येक देश के लिए अनिवार्य हैं।

८—धन सम्पत्ति, उर्वराभूमि, प्रजा को सुख, निरोगिता और शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षा, ये पाँच बातें राष्ट्र के लिए आभूषणस्वरूप हैं।

९--वही अकेला, देश कहलाने योग्य है जहाँ मनुष्यों के परिश्रम किये बिना ही प्रचुर पैदावार होती है। जिसमें आदमियों के परिश्रम करने पर ही पैदावार हो वह इस पद का अधिकारी नहीं है।

१०-- यदि किसी देश में ये सब उत्तम बातें विद्यमान भी हों फिर भी वे किसी काम की नहीं यदि उस देश का राजा ठीक न हो।

परिच्छेद ७५

दुर्ग

१—दुर्बलों के लिए, जिन्हें केवल अपने बचाव की ही चिन्ता होती है, दुर्ग बहुत ही उपयोगी होते हैं, परन्तु बलवान् और प्रतापी के लिए भी वे कम उपयोगी नहीं हैं।

२—जल, प्राकार, मरुभूमि, पर्वत और सघन वन ये सब नाना प्रकार के रक्षणात्मक सीमा-दुर्ग हैं।

३—ऊँचाई, मोटाई, मजबूती और अजेयपन ये चार गुण हैं, जो निर्माणकला की दृष्टि से किलों के लिए अनिवार्य हैं।

४—वह गढ़ सबसे उत्तम है, जो थोड़ी भी जगह भेद्य न हो, साथ ही विस्तीर्ण हो और जो लोग उसे लेना चाहें उनके आक्रमणों को रोकने की जिसमें क्षमता हो।

५—अजेयत्व, दुर्गस्थ सैन्य के लिए रक्षणात्मक सुविधा, रसद तथा अन्य सामग्री का प्रचुर मात्रा में संग्रह, ये सब दुर्ग के लिए आवश्यक बातें हैं।

६—वही सच्चा किला है जिसमें हर प्रकार का सामान पर्याप्त परिमाण में विद्यमान हो और जो ऐसे लोगों के संरक्षण में हो कि जो किले को बचाने के लिए वीरतापूर्वक लड़ें।

७—निस्सन्देह वह सच्चा गढ़ है कि जिसे न तो कोई घेरा डालकर जीत सके, न अचानक हमला करके और न कोई जिसे सुरंग लगाकर ही तोड़ सके।

८—वही वास्तविक दुर्ग है जो अपने भीतर लड़ने वालों को पूर्ण वलशाली बनाता है और घेरा डालने वालों के अटूट उद्योगों को विफल कर देता है।

९—वही खरा दुर्ग है जो नाना प्रकार के विकट साधनों द्वारा अजय्य बन गया है और जो अपने संरक्षकों को इस योग्य बनाता है कि वे वैरियों को किले की सुदूर सीमा पर ही मार कर गिरा सकें।

१०—यदि रक्षक सैन्यवर्ग समय पर फुर्ती से काम न ले तो चाहे दुर्ग कितना ही सुदृढ़ हो किसी काम का नहीं।

परिच्छेद ७६

धनोपार्जन

१—अप्रसिद्ध और अप्रतिष्ठित लोगों को प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित बनाने में धन जितना समर्थ है, उतना और कोई पदार्थ नहीं।

२—गरीबों का सभी अपमान करते हैं, पर धनसमृद्ध की सभी जगह अभ्यर्थना होती है।

३—वह अविश्रान्त ज्योति जिसे लोग धन कहते हैं, अपने स्वामी के लिए सभी अन्धकारमय स्थानों को ज्योत्स्नापूर्ण बना देती है।

४—जो धन पाप रहित निष्कलंक रूप से प्राप्त किया जाता है, उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।

५—जो धन, दया और ममता से रहित है, उसकी तुम कभी इच्छा मत करो और उसको कभी अपने हाथ से छुओ भी मत।

६—दण्ड द्रव्य, विना वारिस का धन, कर का माल, लगान की सम्पत्ति और युद्ध में प्राप्त धन ये सब राज-कोष की वृद्धि करने वाले हैं।

७—दयालुता, जो प्रेम की सन्तति है, उसका

पालन पोषण करने के लिए सम्पत्ति रूपिणी दयार्द्रहृदया धाय की आवश्यकता है।

८—देखो धनवान् आदमी जब अपने हाथ में काम लेता है तो वह उस मनुष्य के समान मालूम होता है कि जो एक पहाड़ की चोटी पर से हाथियों की लड़ाई देखता है।

९—धन का संचय करो क्योंकि शत्रु का गर्व चूर करने के लिए उससे बढ़कर दूसरा हथयार नहीं है।

१०—देखो जिसने बहुत सा धन एकत्रित कर लिया है, शेष दो पुरुषार्थ धर्म और काम उसके करतलगत हैं।

परिच्छेद ७७

सेना के लक्षण

१—राजा के संग्रहों में सर्वश्रेष्ठ वस्तु, वह सेना है जो कि सुशिक्षित बलवान् और संकट में निर्भीक रहने वाली हो।

२—अनेकों आक्रमणों के होते हुए, भयंकर निराशा-जनक स्थिति की रक्षा, मँजे हुए वीर सिपाही ही अपने अटल निश्चय के द्वारा कर सकते हैं।

३—यदि वे समुद्र के समान गर्जते भी हों तो इससे क्या हुआ? काले नाग की एक ही फुंकार में चूहों का सारा झुण्ड का झुण्ड विलीन हो जायेगा।

४—जो सेना हारना जानती ही नहीं और जो कर्तव्यभ्रष्ट नहीं की जा सकती तथा जिसने बहुत से अवसरों पर वीरता दिखाई है वास्तव में वही, 'सेना' नाम की अधिकारिणी है।

५—यथार्थ में सेना का नाम उसी को शोभा देता है जो वीरता के साथ यमराज का भी सामना कर सके, जबकि वह अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ सामने आवे।

६—शूरता, प्रतिष्ठा, शिक्षित मस्तक और पिछले समय में लड़ाइयों का इतिहास, ये चार बातें सेना की

रक्षा के लिए कवचस्वरूप हैं।

७—जो सच्ची सेना है वह सदा शत्रुओं की खोज में रहती है, क्योंकि उसको पूर्ण विश्वास है कि जब कोई वैरी लड़ाई करेगा तो वह उसे अवश्य जीत लेगी।

८—जब सेना में मुस्तैदी और एकाएक प्रचण्ड आक्रमण करने की शक्ति नही होती तब प्रतिष्ठा, तेज और विद्या सम्बन्धी योग्यतायें उसकी कमी को पूरा कर देती हैं।

९—जो सेना संख्या में कम नहीं है और जिसको वेतन न पाने के कारण भूखों नहीं मरना पड़ता वह सेना विजयी होगी।

१०—सिपाहियों की कमी न होने पर भी कोई सेना नहीं बन सकती, जब तक कि उसका संचालन करने के लिए सेनापति न हो।

परिच्छेद ७८

वीर योद्धा का आत्म गौरव

१—अरे ए वैरियो ! मेरे स्वामी के सामने युद्ध में खड़े न होओ क्योंकि पहिले भी उसे बहुत से लोगों ने युद्ध के लिए ललकारा था, पर आज वे सब चिता के पाषाणों में पड़े हुए हैं।

२—हाथी के ऊपर चलाया गया भाला यदि चूक भी जाए तब भी उसमें अधिक गौरव है अपेक्षा उस बाण के जो खरगोश पर चलाया गया हो और वह उसको लग भी गया हो।

३—वह प्रचण्ड साहस जो प्रबल आक्रमण करता है, उसी को लोग वीरता कहते हैं, लेकिन उसका गौरव उस हार्दिक औदार्य में है कि जो अधःपतित शत्रु के प्रति दिखाया जाता है।

४—एक योद्धा ने अपना भाला हाथी के ऊपर चला दिया और वह दूसरे भाले की खोज में जा रहा था कि इतने में उसने एक भाला अपने शरीर में ही घुसा हुआ देखा और ज्यों ही उसने उसे बाहिर निकाला वह प्रसन्नता से मुस्करा उठा।

५—वीर पुरुष के ऊपर भाला चलाया जावे

और उसकी आँख तनिक भी झपक मार जावे तो क्या यह उसके लिए लज्जा की बात नहीं है ?

६—शूरवीर सैनिक जिन दिनों अपने शरीर पर गहरे घाव नहीं खाता है, वह समझता है कि वे दिन व्यर्थ नष्ट हो गये।

७—देखो, जो लोग अपने प्राणों की परवाह नहीं करते बल्कि पृथ्वी भर में फैली हुई कीर्ति की कामना करते हैं, उनके पाँव की बेड़ियाँ भी आँखों को आह्लादकारक होती हैं।

८—जो वीर योद्धा, युद्धक्षेत्र में मरने से नहीं डरते वे अपने सेनापति की कड़ाई करने पर भी सैनिक नियमों को नहीं छोड़ते।

९—अपने हाथ में लिए हुए काम को सम्पादन करने के उद्योग में जो लोग अपने प्राण गवाँ देते हैं उनको दोष देने का किसको अधिकार है ?

१०—यदि कोई आदमी ऐसा मरण पा सके कि जिसे देखकर उसके मालिक की आँख से आँसू निकल पड़ें तो भीख माँगकर तथा विनय प्रार्थना करके भी ऐसी मृत्यु को प्राप्त करना चाहिए।

परिच्छेद ७९

मित्रता

१—जगत् में ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका प्राप्त करना इतना कठिन है जितना कि मित्रता का ? और शत्रुओं से रक्षा करने के लिए मित्रता के समान अन्य कौन सा कवच है।

२—योग्य पुरुष की मित्रता बढ़ती हुई चन्द्र-कला के समान है, पर मूर्ख की मित्रता घटते हुए चन्द्रमा के सदृश है।

३—सत्पुरुषों की मित्रता दिव्यग्रन्थों के स्वाध्याय के समान है। जितनी हो उनके साथ तुम्हारी घनिष्टता होती जाएगी उतने ही अधिक रहस्य तुम्हें उनके भीतर दिखाई पड़ने लगेंगे।

४—मित्रता का उद्देश्य हँसी-विनोद करना नहीं है, बल्कि जब कोई बहक कर कुमार्ग में जाने लगे तो उसको रोकना और उसकी भर्त्सना करना ही मित्रता का लक्ष्य है।

५—बार बार मिलना और सदा साथ रहना इतना आवश्यक नहीं है, यह तो हृदयों की एकता ही है कि जो मित्रता के सम्बन्ध को स्थिर और सुदृढ़ बनाती है।

६—हँसी-मस्करी करने वाली गोष्ठी का नाम मित्रता नहीं है, मित्रता तो वास्तव में वह प्रेम है जो हृदय को आह्लादित करता है।

७—जो मनुष्य तुम्हें बुराई से बचाता है, सुमार्ग पर चलाता है और जो संकट के समय तुम्हारा साथ देता है बस वही मित्र है।

८—देखो, उस आदमी का हाथ कि जिसके कपड़े हवा में उड़ गये हैं कितनी तेजो के साथ फिरसे अपने अंग को ढकने के लिए फुर्ती करता है? यही सच्चे मित्र का आदर्श है जो विपत्ति में पड़े हुए मित्र की सहायता के लिए दौड़कर आता है।

९—मित्रता का दरबार कहाँ पर लगता है! बस वहीं पर कि जहाँ दो हृदयों के बीच में अनन्य प्रेम और पूर्ण एकता है तथा दोनों मिलकर हर एक प्रकार से एक दूसरे को उच्च और उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

१०—जिस मित्रता का हिसाब लगाया जा सकता है उसमें एक प्रकार का कंगलापन होता है। वे चाहे कितने ही गर्वपूर्वक कहें कि मैं उसको इतना प्यार करता हूँ और वह मुझे इतना चाहता है।

परिच्छेद ८०

मित्रता के लिए योग्यता की परख

१—इससे बढ़कर अप्रिय बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसी के साथ मित्रता कर ली जाये, क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहृदय पुरुष फिर उसे छोड़ नहीं सकता।

२—जो पुरुष पहिले आदमियों की जाँच किये बिना ही उनको मित्र बना लेता है वह अपने शिर पर ऐसी आपत्तियों को बुलाता है कि जो केवल उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त होंगी।

३—जिस मनुष्य को तुम अपना मित्र बनाना चाहते हो उसके कुल का उसके गुण दोषों का, कौन कौन लोग उसके साथी हैं और किन किनके साथ उसका सम्बन्ध है इन बातों का अच्छी तरह से विचार कर लो और उसके पश्चात् यदि वह योग्य हो तो उसे मित्र बना लो।

४—जिस पुरुष का जन्म उच्च कुल में हुआ है और जो अपयश से डरता है उसके साथ, आवश्यकता पड़े तो मूल्य देकर भी मित्रता करनी चाहिए।

५—ऐसे लोगों को खोजो और उनके साथ मित्रता करो कि जो सन्मार्ग को जानते हैं और तुम्हारे बहक

जाने पर तुम्हें झिड़क कर तुम्हारी भर्त्सना कर सकें।

६—आपत्ति में एक गुण है—वह एक नापदण्ड है जिससे तुम अपने मित्रों को नाप सकते हो।

७—निस्सन्देह मनुष्य का लाभ इसी में है कि वह मूर्खों से मित्रता न करे।

८—ऐसे विचारों को मत आने दो जिनसे मन निरुत्साह तथा उदास हो और न ऐसे लोगों से मित्रता करो कि जो दुःख पड़ते ही तुम्हारा साथ छोड़ देंगे।

९—जो लोग संकट के समय धोखा दे सकते हैं उनकी मित्रता की स्मृति मृत्यु के समय भी हृदय में दाह पैदा करती हैं।

१०—पवित्र लोगों के साथ बड़े चाव से मित्रता करो, लेकिन जो अयोग्य हैं उनका साथ छोड़ दो, इसके लिए चाहे तुम्हें कुछ भेंट भी देना पड़े।

परिच्छेद ८१

घनिष्ट मित्रता

१—वही मैत्री घनिष्ट है जिसमें अपने प्रीति-पात्र की मर्जी के अनुकूल व्यक्ति अपने को समर्पित करदे।

२—सच्ची मित्रता वही है जिसमें मित्र आपस में स्वतंत्र रहें और एक दूसरे पर दबाव न डालें। विज्ञजन ऐसी मित्रता का कभी भी विरोध नहीं करते।

३—वह मित्रता किस काम की, जिसमें मित्रता के नाम पर ली गई किसी काम की स्वतन्त्रता में सहमति न हो।

४—जब कि दो व्यक्तियों में प्रगाढ़ मैत्री है उनमें से एक दूसरे की अनुमति के बिना ही कोई काम कर लेता है तो दूसरा मित्र आपस के प्रेम का ध्यान करके उससे प्रसन्न ही होगा।

५—जब कोई मित्र ऐसा काम करता है जिसमें तुम्हें कष्ट होता है तो समझ लो कि वह मित्र तुम्हारे साथ या तो परिपूर्ण मैत्री का अनुभव करता है या फिर अज्ञानी है।

६—सच्चा मित्र अपने अभिन्न मित्र को नहीं छोड़ सकता, भले ही वह उसके विनाश का कारण क्यों न हो।

७—जो व्यक्ति किसी को हृदय से और दीर्घ-

काल से प्रेम करता है वह अपने मित्र को घृणा नहीं कर सकता, भले ही वह उसे **बार बार हानि क्यों न पहुँचाता** हो।

८—उन व्यक्तियों के लिए जो अपने अभिन्न मित्र के विरुद्ध किसी प्रकार का आरोप सुनने से इनकार कर देते हैं, वह दिवस बड़ा आनन्दप्रद होता है जब कि उसका मित्र आरोपकों को हानि पहुँचाता है।

९—जो व्यक्ति दूसरे को अटूट प्रेम करता है उसे सारा संसार प्रेम करता है।

१०—जो व्यक्ति पुराने मित्रों के प्रति भी अपने प्रेम में अन्तर नहीं आने देते उन्हें शत्रु भी स्नेह की दृष्टि से देखते हैं।

परिच्छेद ८२

विघातक मैत्री

१—उन व्यक्तियों की मैत्री विघातक ही होती है जो दिखाने को तो यह दिखाते हैं कि वे न जाने कितना प्रेम करते हैं, लेकिन उनके हृदय में प्रेम नहीं होता।

२—उन अभागे नराधमो से सजग रहो कि जो अपने लाभ के लिए तुम्हारे पैरों पर पड़ने के लिए तैयार हैं, पर जब तुमसे उनका कुछ स्वार्थ न निकलेगा तो वे तुम्हें छोड़ देंगे। भला ऐसों की मैत्री रहे या न रहे इसमे क्या आता जाता है ?

३—देखो, जो लोग यह सोचते हैं कि हमें उस मित्र से कितना मिलेगा, वे उस श्रेणी के लोग हैं कि जिनमें चोरों और बाजारू औरतों की गिनती है।

४—कुछ आदमी उस अक्कड़ घोड़े की तरह होते हैं कि जो युद्धक्षेत्र में अपने सवार को गिराकर भाग जाता है। ऐसे लोगों से मैत्री रखने की अपेक्षा तो अकेले रहना ही हजारगुना अच्छा है।

५—जो निकृष्ट व्यक्ति अपने विश्वासपात्र मित्रको उसकी आवश्यकता के समय छोड़ देता है, ऐसे व्यक्ति से मित्रता करने की अपेक्षा न करना कहीं अच्छा है।

६—बुद्धिमानों से शत्रुता, मूर्खों की मित्रता की अपेक्षा लाखगुनी अच्छी है।

७—चाटुकार और स्वार्थी लोगों की मित्रता से शत्रुओं की घृणा सौगुनी अच्छी है।

८—जिस समय तुम कोई ऐसा काम करने में लगे हो जिसे तुम पूरा कर सकते हो उस समय यदि कोई तुम्हारे मार्ग में रोड़े अटकाता है तो उससे तुम एक शब्द भी न कहो, बल्कि धीरे-धीरे उससे सम्बन्ध छोड़ दो।

९—जो व्यक्ति कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं उनकी मित्रता की कल्पना स्वप्न में भी करना बुरा है।

१०—सावधान ! उन लोगों से जरा भी मित्रता न करना कि जो पास में बैठकर तो मीठी मीठी बातें करते हैं पर बाहिर जन-समाज में निन्दा करते हैं।

परिच्छेद ८३

कपट मैत्री

१—जो मित्रता, शत्रु दिखाता है वह केवल निहाई है जिसके आश्रय से मौका मिलने पर वह तुम्हें लोहे के समान पीट देगा।

२—जो लोग ऊपर से तो स्नेह दिखाते हैं परन्तु मनमें वैर रखते हैं उनकी मित्रता कामिनी के हृदय समान थोड़ी सी अवधि में बदल जाएगी।

३—चाहे उसका ज्ञान कितना ही महान् और पवित्र हो, शत्रु के लिए यह फिर भी असम्भव है कि उसके प्रति जो घृणा है उसे हृदय से निकाल दे।

४—उन दुष्ट चालबाजों से डरते रहो कि जो सब के सामने ऊपरी मनसे तो हँसते हैं पर भीतर हो भीतर हृदय में भारी विद्वेष रखते हैं।

५—उन आदमियों को देखो जिनका हृदय तुम्हारे साथ बिल्कुल नहीं हैं परन्तु जिनके वचन तुम्हें आकर्षित करते हैं ऐसे लोगों में सर्वथा विश्वास न रक्खो।

६—एक वैरी पल भर में ही खुल जाएगा यद्यपि वह मित्रता की बड़ी मृदुल भाषा बोलता हो।

७—यदि वैरी विनम्र वचन बोले तो भी उसका

विश्वास न करो क्योंकि धनुष जितना ही अधिक झुकेगा उतना ही अधिक अनिष्ट सूचक होगा।

८—शत्रु यदि हाथ जोड़े और आँसू भी बहावे तो भी उसकी प्रतीति न करो सम्भव है कि उसके हाथों में कोई हथियार छुपा हो।

९—ऐसे आदमी को देखो, जो जन समाज में तुम्हारा आदर करता है परन्तु एकान्त में घृणा करने के लिए हँसता है उसकी प्रत्यक्षरूप में चाटुकारी करो लेकिन उसे समय मिलते ही कुचल दो चाहे वह मित्रता के आलिंगन में ही क्यों न हो।

१०—यदि शत्रु तुमसे मित्रता का ढोंग करता है और तुम भी अभी उससे खुला वैर नहीं कर सकते हो तो तुम भी उससे मित्रता का ढोंग रचो पर मन से उसे सदा दूर रक्खो।

परिच्छेद ८४

मूर्खता

१—क्या तुम जानना चाहते हो कि मूर्खता किसे कहते हैं? जो वस्तु लाभदायक है उसको फेंक देना और हानिकारक पदार्थ को पकड़ रखना, बस यही मूर्खता है।

२—मूर्खता के सब भेदों में सबसे प्रमुख मूर्खता यह है कि ऐसे काम में अपने मन को प्रवृत्त करना जो कि अधम और अयोग्य है।

३—मूर्ख मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है और मुख से निन्दित तथा कर्कष बातें बोलता है, वह उद्धत और निर्लज्ज हो जाता है तथा उसे कोई भी अच्छी बात नहीं नहीं सुहाती है।

४—एक आदमी खूब पढ़ा लिखा और चतुर है, साथ ही दूसरों का गुरु है, फिर भी वह इन्द्रिय-लिप्सा का दास बना रहता है उससे बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है।

५—मूर्ख अपने विषय में अपने जीवन में स्वयं ही आगे से कह देता है कि उसका स्थान नरक के एक तुच्छ बिल में है।

६—उस मूर्ख को देखो जो एक महान् कार्य को करने के लिए अपने हाथ में लेता है, वह उस काम को

बिगाड़ ही न देगा किन्तु अपने को भी बेड़ियाँ पहिनने के योग्य बना लेगा।

७— यदि मूर्ख को सौभाग्य से बहुत सी सम्पत्ति मिल जावे तो उससे पराये लोग ही चैन उड़ाते हैं, किन्तु उसके बन्धुबान्धव तो भूखों ही मरते हैं।

८—यदि एक मूर्ख कोई बहुमूल्य वस्तु प्राप्त करले तो वह एक पागल और उन्मत्त की तरह व्यवहार करेगा।

६—मूर्ख लोगों की मित्रता बड़ी सुहावनी होती है, क्योंकि जब वह टूट जाती है तो कोई दु:ख नहीं होता।

१०—योग्य पुरुषों की सभा में किसी मूर्ख मनुष्य का जाना ठीक वैसा ही है जैसा कि साफ सुथरे पलंग के ऊपर मैला पैर रख देना।

परिच्छेद ८५

अहंकारपूर्ण मूढ़ता

१—विषयदासता ही सबसे बड़ी गरीबी है और प्रकार की दरिद्रता को जगत् दरिद्रता ही नहीं मानता है।

२—जब एक मूढ़ स्वेच्छापूर्वक कोई उपहार देता है तो वह लेने वाले का सौभाग्य है और कुछ नहीं।

३—मूढ़ आदमी स्वयं अपन शिर पर जैसी आपत्तियाँ लाता है वैसी उसके शत्रु भी नहीं पहुँचा सकते।

४—क्या तुम जानना चाहते हो कि बुद्धि का उथलापन किसे कहते हैं? बस उसी अहङ्कार को जिससे मनुष्य मनमें समझता है कि मैं बड़ा सयाना हूँ।

५—जो मूढ़ अज्ञात विषयों के ज्ञान का दिखावा करता है वह, ज्ञात विषयों के प्रति भी सन्देह उत्पन्न कर देता है।

६—मूढ़ आदमी यदि अपने नङ्गे वदन को ढकता है तो इससे क्या लाभ? जब कि उसके मन के ऐब ढँके हुए नहीं हैं।

७—वह ओछा व्यक्ति जो किसी भेद को अपने तक सीमित नहीं रख सकता वह अपने शिर पर बहुत सी आपत्तियाँ बुला लेता है।

८—जो आदमी न तो स्वयं भला बुरा पहि-चानता है और न दूसरों की सलाह मानता है, वह जीवन भर अपने बन्धुओं के लिए दुःखदायी बना रहता है।

९—वह मनुष्य, जो कि मूर्ख की आँखें खोलना चाहता है स्वयं मूर्ख है, क्योंकि मूर्ख केवल एक ही बाज जानता है और वही उसकी समझ में सीधी और सच्ची है।

१०—वह भी एक मूर्ख है जो जगत् मान्य वस्तु को मान्य नहीं मानता वह संसार के लिए एक पिशाच है।

परिच्छेद ८६

उद्धतता

१—उजड्डपन से दूसरों की हँसी उड़ाना ऐसा दुर्गुण है जिससे सभी व्यक्तियों के भीतर घृणा पैदा होती है।

२—यदि तुम्हारा पड़ौसी जानबूझकर झगड़ा करने की भावना से तुम्हें सताता है तो भी सर्वोत्तम बात यही है कि तुम अपने हृदय से बदले की भावना न रक्खो और न उसे वदले में चोट पहुँचाओ।

३—दूसरों से झगड़ा करने की आदत वास्तव में एक दु:खद व्याधि है। यदि कोई व्यक्ति अपने को उससे मुक्त करले तो उसे शाश्वत प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

४—यदि तुम अपने हृदय से सबसे बड़ी बुराई अर्थात् उजड्डपन की भावना को दूर कर दो तो तुम्हें सर्वोच्च आनन्द प्राप्त होगा।

५—ऐसे व्यक्ति को कौन न चाहेगा, जिसमें विद्वेष की भावना को दूर करने की योग्यता है ?

६—जो आदमी अपने पड़ौसियों के प्रति विद्वेष करने में आनन्द प्राप्त करता है उसका कुछ ही दिनों में अध:पतन हो जायगा।

७—वह झगड़ालू स्वभाव का राजा जो सदा

झगड़े में लिप्त रहता है उस नीति पर आचरण नहीं कर सकता जिससे राष्ट्र का अभ्युत्थान होता है।

८—झगड़े से बचने से समृद्धि प्राप्त होती है और यदि तुम झगड़े को बढ़ाने का मौका दोगे तो शीघ्र ही तुम्हारा पतन हो जायगा।

९—जब भाग्यदेवी किसी आदमी पर प्रसन्न होती है तो वह सब प्रकार की उत्तेजनाओं से बचता है, परन्तु उसके भाग्य में यदि विनाश होना बदा है तो वह अपने पड़ौसियों के प्रति विद्वेष की भावना पैदा करने से नहीं चूकता।

१०—विद्वेष का फल बुरा होता है, लेकिन भलाई का परिणाम शान्ति और समन्वयकार्य होता है।

परिच्छेद ८७

शत्रु की परख

१—जो तुम से शक्तिशाली हैं उनके विरुद्ध तुम प्रयत्न मत करो लेकिन जो तुम से कमजोर हैं उनके विरुद्ध बिना एकक्षण विश्राम किये निरन्तर युद्ध करते रहो।

२—वह राजा जो निर्दयी है और जिसके कोई संगी साथी नहीं हैं साथ ही ऐसी शक्ति भी नहीं कि अपने पैरों पर खड़ा हो सके वह अपने शत्रु का कैसे सामना कर सकता है।

३—वह राजा जिसमें न तो साहस है, न बुद्धिमत्ता, और न उदारता इनके सिवाय जो अपने पड़ौसियों से मेल नहीं रखता उसके वैरी सरलता से उसे जीत लेंगे।

४—वह राजा जो कि सदा कटु स्वभाव का है और अपनी वाणी पर नियन्त्रण नहीं रख सकता, वह हर आदमी से, हर स्थान पर हर समय नीचा देखेगा।

५—जिस राजा में चतुराई नहीं है, जो अपनी मान प्रतिष्ठा की परवाह नहीं करता और जो राजनीति शास्त्र तथा उस सम्बन्धी अन्य विषयों में दुर्लक्ष्य रखता है वह अपने शत्रुओं के लिए आनन्द का कारण होता है।

६—जो भूपाल अपनी लिप्सा का दास है और

क्रोधावेश में अन्धा होकर अपनी तर्क बुद्धि खो बैठता है उसके वैरी उसके वैर का स्वागत करेंगे।

७—जो भूपति किसी काम को उठा तो लेता है पर अमल ऐसा करता है कि जिससे उस काम में सफलता मिलनी संभव नहीं होती ऐसे राजा की शत्रुता मोल लेने के लिए यदि कुछ मूल्य भी देना पड़े तो उसे देकर ले लेना चाहिए।

८—यदि किसी राजा में गुण तो कोई है नहीं, और दोष बहुत से हैं तो उसका कोई भी संगी साथी नहीं होगा तथा उसके शत्रु घी के दीपक जलाएँगे।

९—यदि मूर्ख और कायरों के साथ युद्ध करने का अवसर आता है तो शत्रुओं को निस्सीम आनन्द होता है।

१०—वह नरेश जो अपने मूर्ख पड़ौसियों से लड़ने और आसानी से विजय प्राप्त करने का यत्न नहीं करता उसे कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती।

परिच्छेद ८८

शत्रुओं के साथ व्यवहार

१—उस हत्यारी बात को कि जिसे लोग शत्रुता कहते हैं, जान-बूझकर कभी न छेड़ना चाहिए, चाहे वह परिहास्य के लिए ही क्यों न हो।

२—तुम उन लोगों को भले ही शत्रु बना लो कि जिनका हथियार धनुष-बाण है, परन्तु उन लोगों को कभी मत छेड़ो जिनका हथियार जिह्वा है।

३—जिस राजा के पास सहायक तो कोई भी नहीं है पर जो ढेर के ढेर शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता है वह पागल से भी बढ़कर पागल है।

४—जिस राजा में शत्रुओं को मित्र बना लेने की कुशलता है उसकी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।

५—यदि तुमको बिना किसी सहायक के अकेले दो शत्रुओं से लड़ने का अवसर आए तो उनमें से किसी एक को अपनी ओर मिला लेने की चेष्टा करो।

६—तुमने अपने पड़ौसी को मित्र या शत्रु बनाने का कुछ भी निश्चय कर रक्खा हो, बाह्य आक्रमण होने पर उसे कुछ भी न बनाओ, बस यों ही छोड़ दो।

७—अपनी कठिनाइयों का हाल उन लोगों में

प्रगट न करो कि जो अभी तक उनसे अनजान हैं और न अपनी दुर्बलतायें बैरियों को ज्ञात होने दो।

८—चतुरतापूर्वक एक युक्ति सोचो, अपने साधनों को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाओ तथा अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लो। यदि तुम यह सब कर लोगे तो तुम्हारे शत्रुओं का गर्व चूर्ण होकर धूल में मिलते कुछ देर न लगेगी।

९—काँटेदार वृक्षों को छोटेपन में ही काट देना चाहिए, क्यों जब वे बड़े हो जाएँगे तो स्वयं ही उस हाथ को घायल कर देंगे जो उन्हें काटने जावेगा।

१०—जो लोग अपना अपमान करने वालों का गर्व चूर्ण नहीं करते वे वास्तव में बहुत समय तक नहीं टिकेंगे।

परिच्छेद ८९

घर का भेदी

१—कुञ्जवन और पानी के फुब्बारे भी कुछ आनन्द नहीं देते यदि उनसे बीमारी पैदा होती है, इसी प्रकार अपने नातेदार भी विद्वेष योग्य हो जाते हैं जब कि वे उसका सर्वनाश करना चाहते हैं।

२—उस शत्रु से अधिक डरने की जरूरत नहीं है कि जो नङ्गी तलवार की तरह है किन्तु उस शत्रु से सावधान रहो कि जो मित्र बनकर तुम्हारे पास आता है।

३—अपने गुप्त वैरी से सदा सजग रहो क्योंकि संकट के समय वह तुम्हें कुम्हार की डोरी के समान बड़ी सफाई से काट डालेगा।

४—यदि तुम्हारा कोई ऐसा शत्रु है कि जो मित्र के रूप में घूमता-फिरता है तो वह शीघ्र ही तुम्हारे साथियों में फूट के बीज बो देगा और तुम्हारे शिर पर सैकड़ों बलाएँ ला डालेगा।

५—जब कोई भाई बन्धु तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करे तो वह तुम पर अनगिनत संकट ला सकता है यहाँ तक कि उनसे स्वयं तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जावेंगे।

६—जब किसी राजा के दरबार में छल कपट

प्रवेश कर जाता है तो फिर यह असंभव है कि एक न एक दिन वह उसका स्वयं भक्ष्य न बन जाए।

७—जिस घर में भेदवृत्ति पड़ गई है वह उस बर्तन के समान है जिसमें ढक्कन लगा हुआ है, यद्यपि वे दोनों देखने में एक से मालूम होते हैं फिर भी वे एक कभी नहीं हो सकते।

८—देखो जिस घर में फूट पड़ी हुई है वह रेती से रेते हुए लोहे के समान कण कण होकर धूल में मिल जाएगा।

९—जिस घर में पारस्परिक कलह है सर्वनाश उसके शिर पर लटक रहा है फिर वह कलह चाहे तिल में पड़ी हुई दरार की तरह ही छोटा क्यों न हो।

१०—देखो जो मनुष्य ऐसे आदमी के बिना मान सम्मान के व्यवहार करता है कि जो मन ही मनमें उससे द्वेष रखता है, वह उस मनुष्य के समान है जो काले नाग को साथी बनाकर एक ही झोंपड़े में रहता है।

परिच्छेद ९०

बड़ों के प्रति दुर्व्यवहार न करना

१—जो आदमी अपनी भलाई चाहता है, उसे सबसे अधिक सावधानी इस बात की रखनी चाहिए कि वह **महान् पुरुषों का अपमान** करने से अपने को बचावे।

२—यदि कोई मनुष्य, **महात्माओं का निरादर करेगा** तो उनकी शक्ति से उसके शिर पर अनन्त आपत्तियाँ आ टूटें गी।

३—क्या तुम अपना सर्वनाश करना चाहते हो? तो जाओ किसी के सदुपयोग पर ध्यान न दो और जाकर उन लोगों के साथ छेड़ाखानी करो कि जो जब चाहें तुम्हारा नाश करने की शक्ति रखते हैं।

४—जो दुर्बल मनुष्य, बलवान् और सत्ताधारी पुरुषों का अपमान करता है वह मानो यमराज को अपने पास आने के लिए संकेत करता है।

५—जो लोग, पराक्रमी राजा के क्रोध को उभारते हैं, वे चाहे कहीं जावें कभी सुख समृद्ध न होंगे।

६—दावाग्नि में पड़े हुए लोग चाहे भले ही बच जाएँ पर उन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है कि जो शक्तिशाली पुरुषों के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं।

७—यदि आत्मबलशाली ऋशिगण तुम पर

क्रुद्ध हैं तो विविध प्रकार के आनन्द से उल्लसित भाग्यशाली जीवन और समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण तुम्हारा धन फिर कहाँ होगा ?

८—जिन राजाओं का अस्तित्व शाश्वतरूप से स्थायी भित्ति पर स्थापित है वे भी समस्त बन्धुबान्धवों सहित नष्ट हो जाएँगे यदि पर्वत के समान शक्तिशाली महर्षिगण उनके सर्वनाश की कामना करें।

९—और तो और स्वयं देवेन्द्र भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाये और अपना प्रभुत्व गवां बैठे, यदि पवित्र प्रतिज्ञा वाले सन्त लोग क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखें।

१०—यदि आध्यात्मिक ऋद्धि रखने वाले महर्षिगण रुष्ट हो जायें तो वे मनुष्य भी नहीं बच सकते कि जो सुदृढ़ से सुदृढ़ आश्रय के ऊपर निर्भर हैं।

परिच्छेद ९१

स्त्री की दासता

१—जो लोग अपनी स्त्री के श्री चरणों की अर्चना में ही लगे रहते हैं वे कभी महत्व प्राप्त नहीं कर सकते और जो महान् कार्यों के करने की उच्चाशा रखते हैं वे ऐसे निकृष्ट प्रेम के पाश में नहीं फँसते।

२—जो आदमी अपनी स्त्री के असीम मोह में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में हास्यस्पद हो जाएगा और लज्जा से उसे अपना मुंह छिपाना पड़ेगा।

३—वह नामर्द जो अपनी स्त्री के सामने झुक-कर चलता है, सत्पात्र पुरुषों के सामने वह सदा शरमावेगा।

४—शोक है उस मुक्ति-विहीन अभागे पर जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है, उसके गुणों का कभी कोई आदर न करेगा।

५—जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह गुरुजनों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता।

६—जो लोग अपनी स्त्री की कोमल भुजाओं से भयभीत रहते हैं वे यदि देवों के समान भी रहें तब भी उनका कोई मान न करेगा।

७—जो मनुष्य चोली—राज्य का अधिपत्य स्वीकार करता है, उसकी अपेक्षा एक लजीली कन्या में अधिक गौरव है।

८—जो लोग अपनी स्त्री के कहने में चलते हैं वे अपने मित्रों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण न कर सकेंगे और न उनसे कोई शुभ काम ही हो सकेगा।

९—जो मनुष्य स्त्री-राज्य का शासन स्वीकार करते हैं उन्हें न तो धर्म मिलेगा और न धन, इनके सिवाय न उन्हें अखण्ड प्रेम का आनन्द ही मिलेगा।

१०—जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यों में रत हैं और जो सौभाग्य-लक्ष्मी के कृपापात्र हैं वे अपनी स्त्री के मोहजाल में फँसने की कुबुद्धि नहीं करते।

परिच्छेद ९२

वेश्या

१—जो स्त्रियाँ प्रेम के लिए नहीं बल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी मायापूर्ण मीठी बातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

२—जो दुष्ट स्त्रियाँ मधुमयी वाणी बोलती हैं पर जिनका ध्यान अपने नफे पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को विचार कर उनसे सदा दूर रहो।

३—वेश्या जब अपने प्रेमी का दृढ़ आलिङ्गन करती है तो वह ऊपर से यह प्रदर्शन करती है कि वह उससे प्रेम करती है परन्तु मनमें तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अज्ञात लाश को छूता है।

४—जिन लोगों के मन का झुकाव पवित्र कार्यों की ओर है, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलङ्कित नहीं करते।

५—जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है वे उन औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते कि जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिए खुला है।

६ —जिनको अपने कल्याण की चाह है वे

स्वैरिणी गणिका का हाथ नहीं छूते कि जो अपनी अपवित्र सुन्दरता को बेचती फिरती है।

७—जो ओछी तबियत के आदमी हैं वे ही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो केवल शरीर से आलिङ्गन करती हैं, जबकि उनका मन दूसरी जगह रहता है।

८—जिनमें सोचने समझने की बुद्धि नहीं है उनके लिए चालाक कामनियों का आलिङ्गन ही अप्सराओं की मोहिनी के समान है।

९—भरपूर साज-सिंगार किये और बनी-ठनी स्वैरिणी के कोमल बाहु नरक की अपवित्र नाली के समान हैं जिसमें घृणित मूर्ख लोग अपने को जा डुबोते हैं।

१०—चंचल मन वाली स्त्री, मद्यपान और जुआ, ये उन्ही के लिए आनन्दवर्द्धक हैं कि जिन्हें भाग्य-लक्ष्मी छोड़ देती है।

परिच्छेद ९३

मद्य का त्याग

१—देखो, जिन लोगों को मद्य पीने का व्यसन लगा हुआ है उनके शत्रु उनसे कभी न डरेंगे और जो कुछ उन्हें मान प्रतिष्ठा प्राप्त है वह भी जाती रहेगी।

२—कोई भी शराब न पिये, यदि कोई पीना ही चाहे तो उन लोगों को पीने दो कि जिन्हें **आर्य पुरुषों से मान-मर्यादा** मिलने की परवाह नहीं है।

३—जो आदमी नशे में चूर है उसकी आकृति स्वयं उसको जन्म देने वाली माता को ही बुरी लगती है। फिर भला वह सत्पात्र पुरुषों को कैसी लगेगी ?

४—जिन लोगों को मदिरापान की घृणित आदत पड़ी हुई है लज्जा-रूपिणी सुन्दरी उनसे अपना मुँह फेर लेती है।

५—यह तो असीम मूर्खता और अपात्रता है कि अपना धन खर्च करे और बदले में विस्मृति तथा विभ्रम को मोल लेवे।

६—जो लोग प्रतिदिन उस **उस विष का पान** करते हैं कि जिसे ताड़ी या मद्य कहते हैं वे मानो महानिन्द्रा में ग्रस्त हैं। उनमें और मृतक में कोई अन्तर नहीं होता।

७--जो लोग चोरी से मदिरा पीते हैं और अपने समय को अचेत अवस्था में तथा स्मृतिशून्यता में गमाते हैं, उनके पडोसी शीघ्र ही इस बात को जान जाएँगे और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे।

८ मद्यपायी व्यर्थ ही यह कहने का ढोंग न करें कि मैं तो मदिरा को जानता ही नहीं, क्योंकि ऐसा कहने से वह उस दुष्कृत्य के साथ झूठ बोलने का पाप और अधिक शामिल करता है।

९ जो मद्य-प्यासे को सीख देने का प्रयत्न करता है, वह उस मनुष्य के समान है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मसाल लेकर ढूंढ़ता है।

१०—जो आदमी अपनी सचेत अवस्था में किसी दूसरे दारूकुट्टे की दुर्गति को स्वयं आँखों से देखता है तो क्या वह निज का अनुमान नहीं लगा सकता कि जब वह नशे में होता है तो उसकी भी यही दशा होती होगी।

परिच्छेद ६४

जुआ

१—जुआ मत खेलो भले ही उसमें जीत क्यों न होती हो, क्योंकि तुम्हारी जीत ठीक उस काँटे के मांस के समान है जिसे मछली निगल जाती है।

२—जो जुआरी सौ हारकर एक जीतते हैं उनके लिए जगत् में उत्कर्षशाली होने की क्या सम्भावना हो सकती है।

३—जो आदमी प्रायः दाव पर बाजी लगाता है उसका सारा धन दूसरे लोगों के ही हाथ में चला जाता है।

४—मनुष्य को जितना अधम जुआ बनाता है उतना और कोई नहीं, क्योंकि इससे उसकी कीर्ति को बट्टा लगता है और उसका हृदय कुकर्म करने की प्रेरणा पाता है।

५—ऐसे आदमी बहुतेरे हैं जिन्हें पाँसा डालने की अपनी चतुराई का घमण्ड है और जो जुआघर के पीछे पागल हैं, लेकिन उनमें से एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसने अन्त में पश्चात्ताप न किया हो।

६—जो आदमी जुआ के व्यसन में अन्धे हुए हैं वे भूखों मरते हैं और हर प्रकार के संकटों में पड़ते हैं।

७—यदि तुम अपना समय जुआघर में नष्ट

कर दोगे तो तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति समाप्त हो जायेगी और तुम्हारी कीर्ति को भी धब्बा लगेगा।

८ जुआ में तुम्हारी सम्पत्ति स्वाहा होगी और प्रामाणिकता नष्ट होगी, इसके सिवाय हृदय कठोर बनेगा और तुम पर दुःख ही दुःख आवेंगे।

९—जो आदमी जुआ खेलता है उसकी कीर्ति, विद्वत्ता और सम्पत्ति ये सब उसका साथ छोड़ देते हैं, इतना ही नहीं, उसे खाने और कपड़े तक के लिए भीख माँगनी पड़ती है।

१०—ज्यों ज्यों आदमी जुआ में हारता जाता है त्यों त्यों उसके प्रति उसकी प्रवृत्ति बढ़ती ही जाती है। इससे उसकी आत्मा को जो कष्ट उठाना पड़ता है उससे जीवन भर के लिए उसकी आत्मा की तृष्णा और अधिक बढ़ जाती है।

परिच्छेद ९५

औषधि

१—वात आदि जिन तीन गुणों का वर्णन ऋषियों ने किया है उनमें से कोई भी यदि अपनी सीमा से घट बढ जावे तो वह रोग का कारण हो जाता है।

२—शरीर के लिए औषधि की कोई आवश्यकता न हो यदि खाया हुआ भोजन परिपाक हो जाने के पश्चात् खाया जावे।

३—भोजन सदैव शान्ति के साथ करो और जीमें हुए अन्न के पच जाने पर ही फिर भोजन करो, बस दीर्घायु होने का यही सर्वोत्तम मार्ग है।

४—जब तक तुम्हारा खाया हुआ अन्न न पच जावे और जब तक कड़क कर भूख न लगे तब तक भोजन के लिए ठहरे रहो और उसके पश्चात् शान्ति के साथ वह खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है।

५—यदि तुम शान्ति के साथ ऐसा भोजन करो जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है तो तुम्हारे शरीर में किसी प्रकार की व्यथा न होगी।

६—जिस प्रकार आरोग्य उस मनुष्य को ढूंढ़ता जो पेट खाली होने पर भोजन करता है, ठीक उसी

प्रकार रोग उस आदमी को ढूंढ़ता हुआ आता है जो मात्रा से अधिक खाता है।

७--जो आदमी मूर्खता से अपनी जठराग्नि से परे खूब ठूंस ठूंस कर खाता है उसको अनगिनते रोग घेरे ही रहेंगे।

८--रोग, उसकी उत्पत्ति और उसका निदान, इन सबका प्रथम विचार कर लो, पीछे तत्परता के साथ उसको दूर करने में लग जाओ।

९--वैद्य को चाहिए कि वह रोगी, रोग और ऋतु का पूर्ण विचार करले, तब उसके पश्चात् औषधि प्रारम्भ करे।

१०--रोगी, वैद्य, औषधि और औषधि-विक्रेता, इन चारों पर ही चिकित्सा निर्भर है और उनमें से हर एक के फिर चार चार गुण हैं।

परिच्छेद ९६

कुलीनता

१—न्याय-प्रियता और लज्जाशीलता स्वभावतः उन्हीं लोगों में होती है जो अच्छे कुल में जन्म लेते हैं।

२—सदाचार, सत्यप्रियता और सलज्जता, इन तीन बातों से कुलीन पुरुष कभी पद-स्खलित नहीं होते।

३—सच्चे कुलीन सज्जन में ये चार गुण पाये जाते हैं—हँसमुख चेहरा, उदार हाथ, मृदुभाषण और स्निग्ध-निरभिमान।

४—कुलीन पुरुष को करोड़ों रुपये मिलें तब भी वह अपने नाम को कलङ्कित न होने देगा।

५—उन प्राचीन कुलों के वंशजों की ओर देखो, जो अपने ऐश्वर्य के क्षीण हो जाने पर भी अपनी उदारता नहीं छोड़ते।

६—देखो, जो लोग अपने कुल के प्रतिष्ठित आचारों को पवित्र रखना चाहते हैं, वे न तो कभी धोखेबाजी से काम लेंगे और न कुकर्म करने पर उतारू होंगे।

७—प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दोष पर चन्द्रमा के कलङ्क की तरह विशेष रूप से सबकी दृष्टि पड़ती है।

८—अच्छे कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के मुख से यदि फूहड़ और निकम्मी बातें निकलेंगी तो लोग उसके जन्म के विषय तक में शङ्का करने लगेंगे।

९—भूमि की विशेषता का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं उनसे उसके कुल का हाल मालूम हो जाता है।

१०—यदि तुम नेकी और सद्गुणों के इच्छुक हो तो तुमको चाहिए कि सलज्जता के भाव का उपार्जन करो और तुम अपनें वंश को सम्मानित बनाना चाहते हो तो तुम सब लोगों के साथ आदरमय व्यवहार करो।

परिच्छेद ९७

प्रतिष्ठा

१—उन बातों से सदा दूर रहो कि जो तुम्हें नीचे गिरा देंगी, चाहे वे प्राण-रक्षा के लिए अनिवार्य रूप से ही आवश्यक क्यों न हों।

२—जो लोग अपने पीछे यशस्वी नाम छोड़ जाना चाहते हैं, वे अपने गौरव बढ़ाने के लिए भी वह काम न करें कि जो उचित नहीं है।

३—समृद्धि की अवस्था में तो नम्रता और विनय की विस्फूर्ति करो, लेकिन हीन स्थिति के समय मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रक्खो।

४—जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित बना डाला है, वे बालों की उन लटों के समान हैं कि जो काटकर फेंक दी गयी हैं।

५—पर्वत के समान उच्च प्रभावशाली लोग भी बहुत क्षुद्र दिखाई पड़ने लगेंगे यदि वे कोई दुष्कर्म करेंगे, फिर चाहे वह कर्म घुंघची के समान ही छोटा क्यों न हो।

६—न तो जिससे यशोवृद्धि ही होती है और न स्वर्ग प्राप्ति, फिर मनुष्य ऐसे आदमी की शुश्रूषा करके क्यों जीना चाहता है कि जो उससे घृणा करता है।

७—अपने तिरस्कार करने वाले के सहारे रह कर उदरपूर्ति करने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मनुष्य बिना हीला हवाला किये अपनें भाग्य में लिखे हुए को भोगने के लिए पूरा तैयार हो जाये।

८—अरे! यह खाल क्या ऐसी अमूल्य वस्तु है कि जो अपनी प्रतिष्ठा बेंचकर भी इसे बचाये रखना चाहते हैं।

९—चमरी गौ अपने प्राण त्याग देती है जबकि उसके बाल काट लिये जाते हैं कुछ मनुष्य भी ऐसे ही मानी होते हैं कि जब वे अपनी मानमर्यादा नहीं रख सकते तो अपनी जीवन लीला का अन्त कर डालते हैं।

१०— जो मनस्वी अपने शुभनाम के नष्ट हो जाने पर जीवित नहीं रहता सारा संसार हाथ जोड़कर उसकी सुयश-मयी वेदी पर भक्ति की भेंट चढ़ाता है।

परिच्छेद ६८

महत्व

१—महान् कार्यों के सम्पादन करने को आकांक्षा को ही लोग महत्त्व के नाम से पुकारते हैं और ओछापन उस भावना का नाम है जो कहती है कि मैं उसके बिना ही रहूँगी।

२—उत्पत्ति तो सब लोगों की एक ही प्रकार की होती है परन्तु उनकी प्रसिद्धि में विभिन्नता होती है, क्योंकि उनके जीवन में महान् अन्तर होता है।

३—उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी यदि कोई सच्चरित्र नहीं है तो वह उच्च नहीं हो सकता और हीन-वंश में जन्म लेने मात्र से कोई पवित्र आचार वाला नीच नहीं हो सकता।

४—रमणी के सतीत्व की तरह महत्त्व की रक्षा भी केवल अन्तरात्मा की शुद्धि से ही की जा सकती है।

५—महान् पुरुषों में समुचित साधनों को उपयोग में लाने और ऐसे कार्यों के सम्पादन करने की शक्ति होती है कि जो दूसरों के लिए असाध्य होते हैं।

६—छोटे आदमियों के बीज का ही यह विशेष दोष है कि जो वे महान् पुरुषों की प्रतिष्ठा, उनकी कृपादृष्टि

और अनुग्रह को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते।

७—ओछी प्रकृति के आदमियों के हाथ यदि कहीं कोई सम्पत्ति लग जाये तो फिर उनके इतराने की कोई सीमा ही न रहेगी।

८—महत्ता सर्वथा ही विनयशील और आडम्बर रहित होती है, परन्तु क्षुद्रता सारे संसार में अपने गुणों का ढिंढोरा पीटती फिरती है।

९—महत्ता सदैव अपने से छोटों के प्रति भी सदय और नम्र व्यवहार ही करती है, परन्तु क्षुद्रता को तो घमण्ड की मूर्ति ही समझो।

१०—बड़प्पन सदैव ही दूसरों के दोषों को ढँकने के यत्न में रहता है, पर ओछापन दूसरों के दोषों को खोजने के सिवाय और कुछ करना ही नहीं जानता।

परिच्छेद ६६

योग्यता

१—जो लोग अपने कर्तव्य को जानते हैं और अपनी योग्यता बढ़ाना चाहते हैं उनकी दृष्टि में सभी सत्कृत्य कर्तव्यस्वरूप हैं।

२—लायक लोगों के आचरण की सुन्दरता ही वास्तविक सुन्दरता है, शारीरिक सुन्दरता उसमें कुछ भी अभिवृद्धि नहीं करती।

३—सार्वजनिक प्रेम, सलज्जता का भाव, सबके प्रति सद्व्यवहार, दूसरों के दोषों को ढांकना और सत्य-प्रियता, ये पाँच शुभाचरण रूपीभवन के आधारस्तम्भ हैं।

४—सन्त लोगों का धर्म है अहिंसा, पर योग्य पुरुषों का धर्म है परनिन्दा से परहेज करना।

५—नम्रता बलवानों की शक्ति है और वह वैरियों का सामना करने के लिए सद्गृहस्थ को कवच का काम भी देती है।

६—योग्यता की कसौटी क्या है? यही कि दूसरों में जो बड़प्पन और श्रेष्ठता है उसको स्वीकार कर लिया जाये, फिर चाहे वह श्रेष्ठता ऐसे ही लोगों में क्यों न हो जो कि तुमसे अन्य बातों में हीन हों।

७—लायक पुरुष की लायकी तब किस काम की जबकि वह अपने को क्षति पहुँचाने वालों के साथ भी सद्-वर्ताव नहीं करता।

८—निर्धनता मनुष्य के लिए अपमान का कारण नहीं हो सकती यदि उसके पास वह सम्पत्ति विद्यमान हो कि जिसे लोग सदाचार कहते हैं।

९—जो लोग सन्मार्ग से कभी विचलित नहीं होते, चाहे प्रलय-काल में और सब कुछ बदलकर इधर का उधर हो जाये पर वे योग्यता रूपी समुद्र की सीमा ही रहेंगे।

१०—निस्सन्देह स्वयं धरती भी मनुष्य के जीवन का बोझ न सँभाल सकेगी यदि लायक लोग अपनी लायकी को छोड़कर पतित हो जावें।

परिच्छेद १००

सभ्यता

१—कहते हैं मिलनसारी प्राय: उन लोगों में पायी जाती है कि जो खुले हृदय से सब लोगों का स्वागत करते हैं।

२—करुणाबुद्धि और शुभ संस्कारों के मेल से ही मनुष्य में प्रसन्न प्रकृति उत्पन्न होती है।

३—शारीरिक आकृति तथा मुखमुद्रा के मिलान से ही मनुष्यों में सादृश नहीं होता, बल्कि सच्चा सादृश्य तो आचार-विचार की अभिन्नता पर निर्भर है।

४—जो लोग न्याय-निष्ठा और धर्मपालन के द्वारा अपना तथा दूसरों का भला करते हैं संसार उनके स्वभाव का बड़ा आदर करता है।

५—हास्य-परिहास में भी कटुवचन मनुष्य के मन में लग जाते हैं, इसलिए सुपात्र पुरुष अपने वैरियों के साथ भी असभ्यता से नहीं बोलते।

६—सुसंस्कृत मनुष्यों के अस्तित्व के कारण ही जगत् के सब कार्य निर्द्वन्दरूप से चल रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, यदि ये आर्य पुरुष न होते तो यह अक्षुण्य-साम्य और स्वारस्य मृतप्राय होकर धूल में मिल जाता।

७—रेती तीक्ष्ण भो हो पर वह युद्ध में लाठी से बढ़कर नहीं हो सकती, ठीक इसी प्रकार आचरणहीन मनुष्य विद्वान् भी हो फिर भी वह सदाचारी से बढ़कर नहीं।

८—अविनय मनुष्य को शोभा नहीं देती चाहे अन्यायी और विपक्षी पुरुष के प्रति हो उसका व्यवहार क्यों न हो।

९—जो लोग मन से प्रसन्न नहीं हो सकते, उन्हें इस विशाल लम्बे चौड़े संसार में, दिन के समय भी अन्धकार के सिवाय और कुछ दिखाई न देगा।

१०—निकृष्ट-प्रकृति पुरुष के हाथ में जो सम्पत्ति होती है वह उस दूध के समान है जो अशुद्ध, मैले वर्तन में रखने से बिगड़ गया हो।

परिच्छेद १०१

निरुपयोगी धन

१—जिस आदमी ने अपने घर में ढेर को ढेर सम्पत्ति जमा कर रक्खी है पर उसे उपयोग में नहीं लाता उसमें और मुर्दे में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि उससे कोई लाभ नहीं उठाता।

२—वह कञ्जूस आदमी जो समझता है कि धन ही संसार में सब कुछ है और इसलिए बिना किसी को कुछ दिये ही उसे जमा करता है वह अगले जन्म में राक्षस होगा।

३—जो लोग धन के लिए सदा ही हाय हाय करते फिरते हैं पर यशोपार्जन करने की परवाह नहीं करते, उनका अस्तित्व पृथ्वी के लिए केवल भार-स्वरूप है।

४—जो मनुष्य अपने पड़ौसियों के प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता वह मरने के पश्चात् अपने पीछे कौनसी वस्तु छोड़ जाने की आशा रखता है ?

५—जो लोग न तो दूसरों को देते हैं और न स्वयं ही अपने धन का उपभोग करते हैं वे यदि करोड़पति भी हों तब भी वास्तव में उनके पास कुछ भी नहीं है।

६—संसार में ऐसे भी कुछ आदमी हैं जो धन

को न तो स्वयं भोगते हैं और न उदारतापूर्वक योग्य पुरुषों को प्रदान करते हैं, वे अपनी सम्पत्ति के लिए रोग-स्वरूप हैं।

७—जो धनिक आवश्यकता वाले को दान देकर उसकी आवश्यकता को पूर्ण नहीं करता उसकी सम्पत्ति उस लावण्यमयी ललना के समान है जो अपने यौवन को एकान्त निर्जन स्थान में व्यर्थ गँवा देती है।

८—उस आदमी की सम्पत्ति कि जिसे लोग प्यार नहीं करते गाँव के बीचों बीच किसी विष-वृक्ष के फलने के समान है।

९—धर्माधर्म का विचार न रखकर और अपने को भूखों मार कर जो धन जमा किया जाता है वह केवल दूसरों के ही काम में आता है।

१०—उस धनवान मनुष्य की क्षीणस्थिति कि जिसने दान दे देकर अपने खजाने को खाली कर डाला है, और कुछ नहीं, केवल जल वर्षाने वाले बादलों के खाली हो जाने के समान है। यह स्थिति अधिक समय तक न रहेगी।

परिच्छेद १०२

लज्जाशीलता

१—योग्य पुरुषों का लजाना उन कामों के लिए होता है कि जो उनके अयोग्य होते हैं, इसलिए वह सुन्दरी स्त्रियों की लज्जा से सर्वथा भिन्न है।

२—आहार, वस्त्र और सन्तान, इन बातों में तो सभी मनुष्य समान हैं, यह तो एक लज्जा की ही भावना है जिससे मनुष्य मनुष्य में अन्तर प्रगट होता है।

३—शरीर तो समस्त प्राणों का निवासस्थान है, पर यह सात्विक लज्जा है जिसमें लायकी और योग्यता वास करती है।

४—लज्जाशीलता क्या लायक लोगों के लिए रत्न के समान नहीं है? और जब वह उससे रहित होता है तब उसकी शेखी और ऐंठ क्या देखने वाली आँख को पीड़ा पहुँचाने वाली नहीं होती?

५—जो लोग दूसरों का अपमान देखकर भी उतने ही लज्जित होते हैं जितने कि स्वयं अपने अपमान से, उन्हें तो लोग लज्जा और सङ्कोच की मूर्ति ही समझेंगे।

६—ऐसे साधनों के सिवाय कि जिनसे उन्हें लज्जित न होना पड़े अन्य साधनों के द्वारा, लायक लोग राज्य

तक पाने के लिए नाहीं कर देंगे।

७—जिन लोगों में लज्जा की सुकोमल भावना है वे अपने को अपमान से बचाने के लिए अपनी जान तक दे देंगे और प्राणों पर आ बनने पर भी लज्जा को नहीं त्यागेंगे।

८—यदि कोई आदमी उन बातों से लज्जित नहीं होता है कि जिनसे दूसरों को लज्जा आती है, तो उसे देख कर भद्रता भी शरमा जायेगी।

९—कुलाचार को भूल जाने से मनुष्य केवल अपने कुल से ही भ्रष्ट होता है, लेकिन जब वह लज्जा को भूल कर निर्लज्ज हो जाता है तब सब प्रकार की भलाइयाँ उसे छोड़ देती हैं।

१०—जिन लोगों की आँख का पानी मर गया है वे जीवित होकर भी मरे के समान हैं। डोरी के द्वारा चलने वाली कठपुतलियों की तरह उनमें भी एक प्रकार का कृत्रिम जीवन ही होता है।

परिच्छेद १०३

कुलोन्नति

१--मनुष्य की यह प्रतिज्ञा कि "मैं अपने हाथों से मेहनत करने में कभी न थकूंगा" उसके परिवार की उन्नति में जितनी सहायक होती है उतनी और कोई वस्तु नहीं।

२--श्रम भरा हुआ पुरुषार्थ और कार्यकुशल सद्बुद्धि, इन दोनों की परिपक्वपूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

३--जब कोई मनुष्य यह कहकर काम करने पर उतारू होता है कि मैं अपने कुल की उन्नति करूँगा तो स्वयं देवता लोग अपनी अपनी कमर कसकर उसके आगे आगे चलते हैं।

४--जो लोग अपने कुटुम्ब को ऊँचा उठाने में कुछ उठा नहीं रखते वे इसके लिए यदि कोई सुविस्तृत युक्ति न भी निकालें तो भी उनके हाथ से किये हुए काम में सिद्धि होगी।

५--जो आदमी बिना किसी अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है, सारा जगत उसको अपना मित्र समझेगा।

६--पुरुष का सच्चा पुरुषत्व तो इसी में है कि

जिसमें उसने जन्म लिया है उस वंश को धन में, बल में और ज्ञान में ऊँचा बना दे।

७—जिस प्रकार युद्धक्षेत्र में आक्रमण का प्रकोप शूरवीर पर पड़ता है ठीक इसी तरह परिवार के पालन-पोषण का भार उन्हीं कन्धों पर आता है कि जो उसके बोझ सँभाल सकते हैं।

८—जो लोग अपने कुल की उन्नति करना चाहते हैं उनके लिए कोई समय बे-समय नहीं है और यदि वे असावधानी से काम लेंगे तथा अपनी झूठी शान पर अड़े रहेंगे तो उनके कुटुम्ब को नीचा देखना पड़ेगा।

९—क्या सचमुच उस आदमी का शरीर, कि जो अपने परिवार को हर प्रकार की विपत्ति से बचाना चाहता है, सर्वथा परिश्रम और कष्टों के लिए ही बना है?

१०—जिस घर में सँभालने वाला कोई योग्य आदमी नहीं है, आपत्तियाँ उसकी जड़ को काट डालेंगी और वह मिट्टी में मिल जायेगा।

परिच्छेद १०४

खेती

१—आदमी जहाँ चाहे घूमें, पर अन्त में अपने भोजन के लिए उसे हल का सहारा लेना ही पड़ेगा। इसलिए हर तरह की सख्ती होने पर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।

२—किसान लोग देश के लिए धुरी के समान हैं, क्योंकि जोतने खोदने की शक्ति न होने के कारण जो लोग दूसरे काम करने लगते हैं उनको रोजी देने वाले वे ही लोग हैं।

३—जो लोग हल के सहारे जीते हैं वास्तव में वे ही जीते हैं और सब लोग तो दूसरे की कमाई हुई रोटी खाते हैं।

४—जहाँ के खेत लहलहाती हुई शस्य की श्यामल छाया के नीचे सोया करते हैं वहाँ के राजा के छत्र के सामने अन्य राजाओं के छत्र झुक जाते हैं।

५—जो लोग खेती करके जीविका चलाते हैं वे केवल यही नहीं, कि स्वयं कभी भीख न माँगेंगे, बल्कि दूसरे भीख माँगने वालों को कभी नाहीं किये बिना दान भी दे सकेंगे।

६—किसान यदि खेतों से अपने हाथ को खींच लेवें तो उन लोगों को भी कष्ट हुए बिना न रहेगा कि जिन्होंने समस्त वासनाओं का परित्याग कर दिया है।

७—यदि तुम अपने खेत की धरती को इतना सुखाओ कि एक सेर मिट्टी सूखकर चौथाई अंश रह जाय तो मुट्ठी भर खाद की भी आवश्यकता न होगी और फसल की पैदावार भरपूर होगी।

८- जोतने की अपेक्षा खाद डालने से अधिक लाभ होता है और जब निदाई हो जाती है तो सिंचाई की अपेक्षा रखवाली अधिक महत्त्व रखती है।

९—यदि कोई आदमी खेत देखने नहीं जाता है और अपने घर पर ही बैठा रहता है तो पतिव्रता पत्नी की तरह उसकी कृषि भी रुष्ट हो जायेगी।

१०—वह सुन्दरी जिसे लोग धरिणी कहते हैं, अपने मन ही मनमें हँसा करती है जबकि वह किसी काहिल को यह कह रोते हुए देखती है कि "हाय मेरे पास खाने को कुछ भी नहीं है।"

परिच्छेद १०५

दरिद्रता

१—क्या तुम जानना चाहते हो कि दरिद्रता से बढ़कर दुःखदायी वस्तु और क्या है ? तो सुनो दरिद्रता ही दरिद्रता से बढ़कर दुखदायी है।

२—सत्तानाशिन दरिद्रता इस जन्म के सुखों की तो शत्रु है ही पर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग की भी घातक है।

३—ललचाती हुई कङ्गाली वंश-मर्यादा और उसकी श्रेष्ठता के साथ वाणी के माधुर्य तक की हत्या कर डालती है।

४—गरज, ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीनदासता की भाषा बोलने के लिए विवश करती है।

५—उस एक अभिशाप के नीचे कि 'जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं' हजार तरह की आपत्तियाँ और उपद्रव छिपे हुए हैं।

६—निर्धन आदमी, बड़ी कुशलता और प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ अगाधतत्त्वज्ञान की भी विवेचना करे तो भी उसके शब्दों की कोई कीमत नहीं होती।

७—एक तो कङ्काल हो और फिर धर्म से शून्य, ऐसे अभागे दरिद्रों से तो उसको जन्म देने वाली माता का भी मन फिर जाएगा।

८—क्या नादारी आज भी मेरा साथ न छोड़ेगी? कल ही तो उसने मुझे अधमरा कर डाला था।

९—जलते हुए शूलों के बीच सो जाना भले ही संभव हो पर निर्धनता की दशा में आँख का झपकना भी असंभव है।

१०—गरीब लोग दरिद्रता से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए यदि उद्योग नहीं करते हैं तो इससे केवल दूसरों के भात, निमक, पानी की ही मृत्यु होती है।

परिच्छेद १०६

भिक्षा

१—यदि तुम ऐसे साधनसम्पन्न व्यक्ति देखते हो कि जो तुम्हें दान दे सकते हैं तो तुम उनसे माँग सकते हो, यदि वे न देने का बहाना करते हैं, इसमें उनका दोष है तुम्हारा नहीं।

२—यदि तुम बिना किसी तिरस्कार के जो पाना चाहते हो वह पा सको तो माँगना आनन्ददायी होता है।

३—जो लोग अपने कर्तव्य को समझते हैं और सहायता न देने का झूठा बहाना नहीं करते उनसे माँगना शोभनीय है।

४—जो मनुष्य स्वप्न में भी किसी की याचना को अमान्य नहीं करता उस आदमी से माँगना उतना ही सम्मानपूर्ण है जितना कि स्वयं देना।

५—यदि आदमी, भीख को जीविका का साधन बनाकर निस्संकोच मांगते हैं तो इसका कारण यह है कि संसार में ऐसे मनुष्य हैं जो मुक्तहस्त होकर दान देने से विमुख नहीं होते।

६—जिन सज्जनों में दान देने के लिए क्षुद्र कृपणता नहीं है उनके दर्शनमात्र से ही दरिद्रता के सब दुःख

दूर हो जाते हैं।

७—जो सज्जन याचक को बिना झिड़क या क्रोध के दान देते हैं उनसे मिलते ही याचक आनन्दित हो उठते हैं।

८—यदि दानधर्मप्रवर्तक याचक न हों तो इस सारे संसार का अर्थ कठ-पुतली के नाच से अधिक नहीं होगा।

९—यदि इस संसार में कोई माँगने वाला न हो तो उदारतापूर्वक दान देने की शान कहाँ रहेगी।

१०—याचक को चाहिए कि यदि दाता देने में असमर्थता प्रगट करता है तो उस पर क्रोध न करे, कारण कि उसकी आवश्यकतायें ही यह दिखाने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए कि दूसरे की स्थिति उस जैसी ही हो सकती है।

परिच्छेद १०७

भीख माँगने से भय

१—जो आदमी भीख नहीं माँगता वह भीख माँगने वाले से करोड़ गुना अच्छा है, फिर वह माँगने वाला चाहे ऐसे ही आदमियों से क्यों न माँगे कि जो बड़े उत्साह और प्रेम मे दान देते हैं।

२—जिसने इस सृष्टि को पैदा किया है, यदि उसने यह निश्चय किया था कि मनुष्य भीख माँगकर भी जीवन-निर्वाह करे तो वह भवसागर में मारा मारा फिरे और नष्ट हो जाये।

३—उस निर्लज्जता से बढ़कर और कोई निर्लज्जता नहीं है कि जो यह कहती है कि मैं माँग माँग कर अपनी दरिद्रता का अन्त कर डालूँगी।

४—बलिहारी है उस आन की, कि जो नितान्त कङ्गाली की हालत में भी किसी के सामने हाथ फैलाने के लिए सम्मति नहीं देती। यह सारा जगत् उस महान् मानव के रहने के लिए बहुत ही छोटा और अपर्याप्त है।

५—जो भोजन अपने परिश्रम से कमाया हुआ होता है, वह पानी की तरह पतला ही क्यों न हो, तब भी उससे बढ़कर स्वादिष्ट और कोई वस्तु नहीं हो सकती।

६—तुम चाहे गाय के लिए पानी ही क्यों न माँगो, फिर भी जिह्वा के लिए याचनासूचक शब्दों को उच्चारण करने से बढ़कर अपमानजनक बात और कोई नहीं है।

७—जो लोग माँगते हैं उन सबसे मैं भी एक भिक्षा माँगता हूँ कि यदि तुम्हें माँगना ही है तो उन लोगों से न माँगो कि जो देने के लिए हील-हवाला करते हैं।

८—याचना का अभागा जहाज उसी क्षण टूटकर टुकड़े टुकड़े हो जायगा कि जिस समय वह हीलासाजी की चट्टान से टकरायेगा।

९—भिखारी के दुर्भाग्य का विचार करते ही हृदय काँप उठता है परन्तु जब वह उन झिड़कियों पर गौर करता है कि जो भिखारी को सहनी पड़ती हैं तब तो वह मर ही जाता है।

१०—मना करने वाले की जान उस समय कहाँ जाकर छिप जाती है कि जब वह "नाहीं" कहता है? भिखारी की जान तो झिड़की की आवाज सुनते ही तन से निकल जाती है।

परिच्छेद १०८

भ्रष्ट जीवन

१ – ये भ्रष्ट और पतित जीव मनुष्यों से कितने मिलते जुलते हैं हमने ऐसा पूर्ण सादृश्य और कहीं नहीं देखा।

२ – शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगों से ये हेयजीव कहीं अधिक सुखी हैं क्योंकि उन्हें मानसिक विकारों की चुटकियाँ नहीं सहनी पड़तीं।

३ —जगत् में भ्रष्ट और पतित जन भी प्रत्यक्ष ईश्वरतुल्य हैं, कारण वे भी उसके समान ही स्वशासित अर्थात् अपनी मर्जी के पाबन्द होते हैं।

४—जब कोई दुष्ट मनुष्य ऐसे आदमी से मिलता है जो दुष्टता में उससे कम है तो वह अपने बढ़े चढ़े दुष्टकृत्यों का वर्णन उसके सामने बड़े मान से करता है।

५ – दुष्ट लोग केवल भय के मारे ही सन्मार्ग पर चलते हैं और या फिर इसलिए कि ऐसा करने से उन्हें कुछ लाभ की आशा हो।

६—पतित जन ढिढोरे के ढोल के समान होते हैं क्योंकि उनको जो गुप्त बातें विश्वास रखकर बताई जाती हैं, उन्हें दूसरों में प्रगट किये बिना उनको चैन ही नहीं पड़ता।

७—नीच प्रकृति के आदमी उन लोगों के सिवाय कि जो घूँसा मार कर उनका जबड़ा तोड़ सकते हैं, और किसी के आगे भोजन से सने हुए हाथ झटक देने में भी आना-कानी करेंगे।

८—लायक लोगों के लिए तो केवल एक शब्द ही पर्याप्त है, पर नीच लोग गन्ने की तरह खूब कुटने-पिटने पर ही देने को राजी होते हैं।

९—दुष्ट मनुष्य ने अपने पड़ौसी को जरा खुशहाल और खाते-पीते देखा नहीं कि वह तुरन्त ही उसके चाल चलन में दोष निकालने लगता है।

१०—क्षुद्र मनुष्य पर जब कोई आपत्ति आती है तो बस उसके लिए एक ही मार्ग खुला होता है और वह यह कि जितनी शीघ्रता से हो सके वह अपने आपको बेच डाले।